आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च

विवेक-शिखा

रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की प्रमुख हिन्दी मासिकी

वर्ष : २४ मार्च–अप्रैल–२००५ अंक : ३-४

रामकृष्ण निलयम, जयप्रकाश नगर, छपरा - ८४१ ३०१ (बिहार)

रामकृष्ण मिशन आश्रम, छपरा, बिहार–८४१३०१

दूरभाष : ०६१५२-२२०७३९

श्रीरामकृष्ण देव के सोलह संन्यासी शिष्यों में मात्र एक ही बंगभूमि के बाहर के थे ओर उन्हें अपनी माटी में जन्म देने का श्रेय छपरा को प्राप्त हुआ । स्वामी अद्‌भुतानन्द नाम से विख्यात ये संन्यासी लाटू महाराज के नाम से परिचित हैं । इनके माता-पिता समाज के अत्यंत पिछड़े वर्ग के थे । शैशवावस्था में ही माता-पिता के देहान्त हो जाने के कारण उन्हें बाल-श्रमिक के रूप में अपने चाचा के साथ कोलकाता जाना पड़ा ।

दैवी कृपा से किशोर लाटू अभूतपूर्व आध्यात्मिक साधना के शिखर-पुरुष, सर्वधर्म समन्वय की प्रतिमूर्ति युगावतार भगवान श्रीरामकृष्ण के सम्पर्क में आए । इन दोनों का मिलन भारत ही नहीं, विश्व के आध्यात्मिक जगत् के लिए एक ऐतिहासिक स्वर्णिम संगम था । यह केवल एक परम गुरु से एक निष्ठावान शिष्य का मिलन नहीं, वरन् भारत की एक युग-परिवर्तनकारी घटना थी, मानो भावी भारत की जाति-भेद विहीन सामाजिक संरचना का अद्‌भुत संकेत था ।

श्रीरामकृष्ण के निदेशन में गहन आध्यात्मिक साधना कर इस निपट ग्रामीण, निरक्षर युवक ने समाधि के उच्चतम सोपान पर ब्रह्मोपलब्धि कर आध्यात्मिक जगत में एक अद्वितीय, अद्‌भृत उदाहरण प्रस्तुत किया । लाटू महाराज की इस अनोखी उपलब्धि को देखकर स्वामी विवेकानन्द ने ही उनका नाम स्वामी अद्‌भुतानन्द रखा ।

बिहार की मिट्टी धन्य है जिससे भगवान बुद्ध, महावीर जैन, सीता माई आदि के नाम जुड़े हैं । यह भूमि एक बार फिर से लाटू महाराज सरीखे सन्त को जन्म देकर धन्य हो गई है । आज स्वामी अद्‌भुतानन्द के जीवनचरित पर बंगला, हिन्दी, अंग्रेजी तथा अन्यान्य देशी-विदेशी भाषाओं में अनेक ग्रन्थों एवं लेखों का प्रकाशन हो रहा है । आध्यात्मिक जगत् में छपरा जिले को एक विशिष्ट गरिमा प्राप्त हुई है एवं वह दिन दूर नहीं जव छपरा एक प्रसिद्ध तीर्थस्थल में परिवर्तित हो जाएगा ।

उक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए रामकृष्ण मिशन, बेलूड़ मठ ने रामनवमी २००३ को छपरा स्थित रामकृष्ण अद्‌भुतानन्द आश्रम का रामकृष्ण मिशन आश्रम के रूप में अधिग्रहण किया । आशा की जाती है कि रामकृष्ण मिशन आश्रम, छपरा अपने पूर्ण सामर्थ्य से लाटू महाराज की स्मृति अक्षुण्ण रखने के साथ-साथ समाज-कल्याण के कार्यक्रमों में स्वयं को समर्पित कर देगा ।

हमारी तात्कालिक आवश्यकताएँ–

१. संत-निवास हेतु-------१० लाख रुपये
२. दरिद्रतम छात्रों के अध्यापनार्थ एक शेड हेतु ३ लाख रुपये
३. चिकित्सालय के लिए दवा एवं उपकरणों के हेतु-------१० लाख रुपये
४. अतिथि निवास के लिए--------३ लाख रुपये ।

कार्यक्रमों को सुचारु रूप से चलाने के लिए हमें धन-बल एवं जन-बल की आवश्यकता है, जिसका अभी नितान्त अभाव है । आपसे विनम्र निवेदन है कि आप हमारे कार्यों में सहायता प्रदान करने हेतु सहानुभूतिपूर्वक आगे आएँ । इस आश्रम को दिये गये दान आयकर की धारा ८० (जी) के अन्तर्गत आयकर से मुक्त हैं । चेक या ड्राफ्ट "रामकृष्ण मिशन आश्रम, छपरा, बिहार' के नाम से ऊपर दिए गए पते पर भेजें ।

भवदीय
स्वामी मुनीश्वरानन्द
सचिव

॥ उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ॥

विवेक-शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की प्रमुख

हिन्दी मासिकी

मार्च-अप्रैल-२००५

सम्पादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

सहायक सम्पादक

ब्रज मोहन प्रसाद सिन्हा

वर्ष २४

अंक ३-४

वार्षिक ६०/- एक प्रति ६/-

आजीवन ग्राहकता शुल्क

(20 वर्षों के लिए) ७००/-

संरक्षक-योजना

न्यूनतम दान-१०००/-

-: सम्पादकीय कार्यालय :-

विवेक-शिखा

रामकृष्ण निलयम्, जयप्रकाश नगर

छपरा : ८४१ ३०१ (बिहार)

दूरभाष : (०६१५२) २३२६३९

संस्थापक प्रकाशिका

स्व० श्रीमती गंगा देवी

इस अंक में

विवेक शिखा

के आजीवन सदस्य

२०४. श्री ए. डी. भट्टाचार्य-भद्रकाली (पं.बं.)
२०४. श्री ए. डी. भट्टाचार्य-भद्रकाली (पं.बं.)
२०५. अध्यक्ष-हिन्दी विभाग, राजेन्द्र कॉलेज, छपरा सारण (बिहार)
२०६. श्री दीपक कुमार विद्यार्थी, काराधीक्षक जमशेदपुर (झारखण्ड)
२०७. सचिव, रामकृष्ण मिशन, पोरबन्दर (गुजरात)
२०८. सचिव, रामकृष्ण मिशन, राँची (बिहार)
२०९. श्रीमती शुभा कामत-मुम्बई (महाराष्ट्र)
२१०. श्री बी. एल. अग्रवाल, नगाँव (आसाम)
२११. श्री कैलास खेतान, नगाँव (आसाम)
२१२. श्रीमती शोभा मनोत, कोलकाता
२१३. श्री संजय जितुरकर, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
२१४. श्री कृष्ण कुमार नेवटिया, कोलकाता
२१५. श्री नन्द लाल टांटिया, उत्तर काशी
२१६. श्रीमती मंजु गुप्ता, वाराणसी
२१७. श्रीराम कुमार शुक्ला, बाराबंकी
२१८. डॉ० दिनेशचन्द्र पाठक, चम्पावत
२१९. श्रीमती वसन्ती शर्मा, ऊधम सिंह नगर
२२०. श्रीमती विद्या मुरारी, पिथौरागढ़
२२१. श्रीमती गीता मर्थला, नैनीताल
२२२. रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर
२२३. श्री डी० डी० शर्मा, भोपाल

विवेक शिखा के संरक्षक

विवेक शिखा के प्रकाशन की सुविधा को ध्यान में रखकर **'विवेक शिखा'** के 'स्थायी कोष' की योजना बनायी गयी है। जो कोई कम से कम १०००/- (एक हजार) रुपये या इससे अधिक रुपये 'विवेक शिखा' के 'स्थायी कोष' के लिए दान देंगे वे इसके संरक्षक होंगे। विवेक शिखा में उनका नाम प्रकाशित होगा और वे आजीवन विवेक शिखा निःशुल्क प्राप्त करते रहेंगे। विवेक शिखा के जो आजीवन सदस्य हैं वे शेष रकम देकर इसके संरक्षक हो सकते हैं। यह योजना केवल भारत के दाताओं के लिए लागू है।

व्यवस्थापक

संरक्षक सूची

क्र.	नाम	स्थान	राशि
१.	श्रीमती कमला घोष	– इलाहाबाद	–३,०००/-
२.	श्री नन्दलाल टाँटिया	– कोलकाता	–१,०००/-
३.	श्री हरवंश लाल पाहड़ा	– जम्मूतवी	–१,०००/-
४.	श्रीमती निभा कौल	– कोलकाता	–१,०००/-
५.	डॉ. सुजाता अग्रवाल	– कर्नाटक	–१,०००/-
६.	श्रीमती सुभद्रा हाकसर	– कोलकाता	–५,०००/-
७.	स्वामी प्रत्यगानन्द	– चेन्नई	–१,०००/-
८.	श्रीमती रंजना प्रसाद	– रायपुर	–१,०००/-
९.	श्री जी.पी.एस. धिमीरे	– काठमांडू	–१,०००/-
१०.	डॉ० निवेदिता बक्शी	– कुर्ला पं०मु०	–१,०००/-
११.	श्री उमापद चौधरी	– देवघर	–१,०००/-
१२.	श्री शत्रुघ्न शर्मा	– फतेहवाद	–१,०००/-
१३.	श्री प्रभुनाथ सिंह	– माने, बिहार	–१,०००/-
१४.	श्री रामकृष्ण वर्मा	– कोटा राजस्थान	–१,०००/-
१५.	श्री कीर्त्यानन्द झा	– पटना, बिहार	–१,०००/-
१६.	श्री रामअवतार चौधरी	– छपरा, बिहार	–१,०००/-
१७.	डॉ. निधि श्रीवास्तव	– जमशेदपुर	–१,०००/-
१८.	श्री सतीश कुमार वंशल	– दिल्ली	–१,०००/-
१९.	श्री उदयवीर शर्मा	– खंडवाया उ.प्र.	–१,०००/-
२०.	श्री आर. बी. देशमुख	– पुणे	–१,००१/-
२१.	कुमारी उषा हेगड़े	– पुणे	–१,०००/-
२२.	श्री राजकेश्वर राम	– पटना, बिहार	–१,०००/-
२३.	डॉ. (श्रीमती) नीलिमा सरकार	– कोलकाता	–१,०००/-
२४.	श्री एन.के. वर्मा	– मुम्बई	–१,०००/-
२५.	श्री अशोक राव	– छिंदवारा	–१,१००/-
२६.	श्री [illegible]तो लाल खेतान	– पटना	–१,०००/-
२७.	डॉ. प्रदीप कुमार बक्शी	– कोलकाता	–२,०००/-
२८.	डॉ. शरत् मेनन	– मुम्बई	–१,०००/-
२९.	श्री रामकृष्ण आश्रम	– मैसूर	–१,०००/-
३०.	श्रीमती छविराज सिंह	– गाजीपुर	–१,०००/-
३१.	श्री पंकज कुमार	– अ० प्रदेश	–१,०००/-
३२.	श्री ए० डी० भट्टाचार्य	– भद्रकाली	–१,०००/-
३३.	श्रीमती सरला बेन पाठक	– बडोदरा	–१,०००/-
३४.	डॉ० सुचरिता सेन	– राजकोट, गुजरात	–१,०००/-
३५.	श्री जवाहर लाल वैश	– जयन्त, म०प्र०	–१,०००/-

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो ।

विवेक-शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की प्रमुख

हिन्दी मासिकी

वर्ष--२४ मार्च-अप्रैल--२००५ अंक--३-४

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा । निजानन्द में रखती अविचल विमल, 'विवेक शिखा' ॥

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

वह मनुष्य धन्य है जिसका मस्तिष्क और हृदय दोनों ही समान रूप से विकसित हुए हैं । सभी परिस्थितियों में वह सरलता के साथ उत्तीर्ण हो जाता है । भगवान के प्रति उसमें सरल विश्वास और दृढ़ श्रद्धा-भक्ति होती है, साथ ही उसके आचार-व्यवहार में भी कहीं कोई कमी नहीं होती । सांसारिक व्यवहार के समय वह पूरा-पूरा व्यवसायी होता है, विद्वान् पण्डितों की सभा में वह सर्वश्रेष्ठ विद्वान् सिद्ध होता है, वाद-विवाद में अकाट्य युक्तियों द्वारा वह अपनी तीक्ष्ण बुद्धि का परिचय देता है । माता-पिता के सम्मुख वह विनयी, आज्ञाकारी होता है, आत्मीय-स्वजन और मित्रों को वह अतिशय प्रिय प्रतीत होता है, पड़ोसियों के प्रति वह दया और सहानुभूति रखता और सदा उनकी मदद के लिए तैयार रहता है, पत्नी के सामने वह मानो साक्षात् मदन देवता होता है । इस तरह का मनुष्य वास्तव में सर्वगुण सम्पन्न होता है ।

(२)

मगर को जल की ऊपरी सतह पर तैरना बहुत अच्छा लगता है, पर उसके ऊपर आते ही लोग उसे मारने को दौड़ते हैं । बेचारा क्या करे, प्राणों के डर से मजबूर होकर उसे पानी के नीचे ही रहना पड़ता है, ऊपर नहीं आते बनता । परन्तु फिर भी बीच-बीच में मौका मिलते ही वह एक-बार सूँ-सूँ करता हुआ जल के ऊपर तैर लेता है । हे संसारी जीव, मैं जानता हूँ कि तुम्हें भी सच्चिदानन्द-सागर में तैरने की इच्छा होती है, पर स्त्री-पुत्र-परिवार के बोझ के कारण तुम्हें संसार में डूबे रहना पड़ता है । परन्तु फिर भी बीच-बीच में मौका पाते ही भगवान् का स्मरण करो, व्याकुल होकर उनसे प्रार्थना करो, उन्हें अपना दुःख-कष्ट बताओ। योग्य समय पर अवश्य ही वे तुम्हें मुक्त करेंगे, आनन्द-सागर में तैरने की शक्ति देंगे ।

(३)

जब भगवान् ने तुम्हें संसार में ही रखा है तो तुम क्या करोगे ? उनकी शरण लो, उन्हें सब कुछ सौंप दो, उनके चरणों में आत्मसमर्पण करो, ऐसा करने से फिर कोई कष्ट नहीं रह जाएगा। तब तुम देखोगे कि सब कुछ उन्हीं की इच्छा से हो रहा है ।

❑

जय रामकृष्ण नमामि

—गौड़ सारंग क्षिताली

भव-भय-भंजन, पुरुष निरंजन, रति-पति-भंजनकारी ।
यति-जन-रंजन, मनोमद खंडन, जय भव-बन्धन-हारी ॥
जय जन-पालक, सुरदल-नायक, जय-जय विश्व विधाता ।
चिर शुभ साधक, मति-मल-पावक जय चित-संशय त्राता ।
सुर-नर वन्दन, विजर विवन्दन, चित-मन-नन्दनकारी ।
रिपु-चय मंथन, जय भवतारण, स्थल-जल-भूधर-धारी ॥
शम-दम-मण्डन, अभय-निकंदन, जय-जय-मंगलदाता ।
जय सुख-सागर, नटवर नागर, जय शरणागत-पाता ॥
भ्रम-तम-भास्कर, जय परमेश्वर, सुखकर-सुन्दर-भाषी ।
अचल सनातन, जय भव-पावन, जय विजयी अविनाशी ॥
भक्त विमोहन, वरतनु-धारण, जय हरिकीर्तन-भोला ।
गद्-गद्-भाषण, चित-मन-तोषण, ढल-ढल-नर्तन लीला ॥
मति-गति बर्द्धन, कलि-बल-मर्दन, विषय विराग प्रसारी ।
जड़-चित-चेतक, भव-जल, भेलक, जय नर-मानसचारी ॥
जय पुरुषोत्तम, अनुपम संयम, जय-जय अन्तरयामी ।
खरतर-साधन, नर-दुःख-वारण, जय रामकृष्ण नमामि ॥

भावार्थ—भव-भय को दूर करनेवाले, निरंजन पुरुष, काम को दमन करने वाले, साधु सन्तों को आनन्द देनेवाले, मन के (अहंकारादि) मद का खण्डन करने वाले, भव बंधन को दूर करनेवाले, हे रामकृष्ण, तुम्हारी जय हो। जन के रक्षक, देवताओं के स्वामी, विश्वविधाता, तुम्हारी जय हो। मंगलदाता, बुद्धि की मलिनता को विशुद्ध और चित्त के संशयों को दूर करनेवाले, हे रामकृष्ण, तुम्हारी जय हो।

देवता और मनुष्य जिनकी वन्दना करते हैं, जो अजर, बन्धन रहित और लोगों के मन को आनन्द देनेवाले हैं, जो शत्रु समूह (काम क्रोध आदि) का मन्थन करने वाले, संसार-समुद्र को पार करानेवाले, स्थल, जल और आकाश को धारण करनेवाले हैं, हे रामकृष्ण तुम्हारी जय हो। शम दम युक्त, अभय के धाम, मंगलों के दायक, हे रामकृष्ण, तुम्हारी जय हो। सुख के सागर, नटवर नागर, शरणागत के पालक, हे रामकृष्ण तुम्हारी जय हो !

भ्रमरूपी अन्धकार को मिटाने के लिए तुम सूर्य हो, सुखप्रद सुमधुरभाषी हो, हे परमेश्वर तुम्हारी जय हो। अचल, सनातन, संसार को पवित्र करनेवाले, विजयी, अविनाशी, हे रामकृष्ण तुम्हारी जय हो। भक्त को मुग्ध करनेवाले, श्रेष्ठ शरीरधारी, हरिकीर्तन में उन्मत्त होनेवाले, तुम्हारी जय हो। तुम्हारे गद्-गद् भाषण और मनोहर नृत्य से भक्तों के चित्त और मन सन्तुष्ट होते हैं।

मन की आध्यात्मिक गति बढ़ानेवाले, कलिमल का मर्दन और विषयों के प्रति वैराग्य दृढ़ करनेवाले, जड़ मन को चैतन्य करनेवाले, संसार-जल का शोषण करनेवाले, मनुष्य के मन में विचरण करनेवाले, हे रामकृष्ण, तुम्हारी जय हो ! हे पुरुषोत्तम, अनुपम संयमी, तुम्हारी जय हो, हे अन्तर्यामी तुम्हारी जय हो ! तीव्र साधना करनेवाले, नर के दुःख दूर करनेवाले, हे रामकृष्ण, तुम्हारी जय हो, तुम्हें प्रणाम है ! □

तदपि कहें बिनु रहा न कोई

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

भगवान श्रीरामकृष्ण देव के चारित्रिक ऐश्वर्य का, बहुआयामी जीवन का, अनन्त विभूति का वर्णन करना मुझ जैसे अति सामान्य व्यक्ति के लिए कठिन ही नहीं, परम दुष्कर है। कहाँ उनका अनन्त भावमय स्वरूप और कहाँ मेरी सीमित दृष्टि ! कहाँ उनका असीम आकाश-सा व्यापक और गहन सागर-सा अतल व्यक्तित्व और कहाँ मेरी लघुता ! क्या बौने हाथ से हिमालय के उत्तुंग शिखर का स्पर्श किया जा सकता है ? क्या हल्का गोता लगाकर सागर को गहराई मापी जा सकती है ? इसलिए मैं एक संकोच का अनुभव करता हूँ, एक कठिनाई का बोध करता हूँ।

कुछ ऐसी ही कठिनाई का अनुभव गोस्वामी तुलसीदास जैसे महान कवि को भगवान श्रीराम के चरितगान के समय हुआ था। वे महान् कवि थे। फिर भी वे कहते हैं—

कहँ रघुपति के चरित अपारा ।
कहँ मति मोरि निरत संसारा ॥
जेहिं मारुत गिरि मेरु उड़ाही ।
कहहु तूल केहि लेखे माहीं ॥
समुझत अमित राम प्रभुताई ।
करत कथा मन अति कदराई ॥

(बाल कांड ११/-६)

अर्थात् कहाँ तो श्रीरघुनाथ जी का अपार चरित्र, और कहाँ संसार में आसक्त मेरी बुद्धि ! जिस हवा से सुमेरु जैसे पहाड़ उड़ जाते हैं; कहिये तो, उसके सामने रुई किस गिनती में हैं ! श्रीराम की असीम प्रभुता को समझकर कथा रचने में मेरा मन बहुत हिचकता है ।

फिर भी गोस्वामी जी आगे कहते हैं--

सब जानत प्रभु प्रभुता सोई ।
तदपि कहें बिनु रहा न कोई ॥

यानि 'यद्यपि प्रभु श्रीरामचन्द्र जी की प्रभुता को सब ऐसी (अकथनीय) ही जानते हैं तथापि कहे बिना कोई नहीं रहा।' इसका कारण है ? तुलसी दास जी कहते हैं-वेद ने इसका कारण यह बताया है कि भजन का प्रभाव कई प्रकार से बताया गया है। यानि भगवान् की महिमा का पूरा वर्णन तो कोई कर नहीं सकता, परन्तु जिससे जितना बन पड़े उतना भगवान का गुणगान करना चाहिए। क्योंकि थोड़ा-सा भी भगवान् का भजन मनुष्य को सहज ही भव-सागर से तार देता है। आगे वे कहते हैं—जो प्रभु एक हैं, जिनकी कोई इच्छा नहीं है, जिनका कोई रूप और नाम नहीं है, जो अजन्मा, सच्चिदानन्द और परमधाम हैं और जो सब में व्यापक एवं विश्वरूप हैं, उन्हीं भगवान् ने दिव्य शरीर धारण करके नाना प्रकार की लीला की है। वह लीला केवल भक्तों के हित के लिए ही है, क्योंकि भगवान् परम कृपालु हैं। और शरणागत के बड़े प्रेमी हैं। जिनकी भक्तों पर बड़ी ममता और कृपा है, जिन्होंने एक बार जिस पर कृपा कर दी, उस पर फिर कभी क्रोध नहीं किया। इस क्रम को बढ़ाते हुए गोस्वामी जी कहते हैं—

बुध बरनहिं हरि जस अस जानी ।
करहि पुनीत सुफल निज बानी ।
तेहि बल मैं रघुपति गुन गाथा ।
कहिहउँ नाइ राम पद माथा ॥

अर्थात् यही समझकर बुद्धिमान लोग उन श्री हरि का यश वर्णन करके अपनी वाणी को पवित्र और सफल बनाते हैं। उसी बल से (महिमा का यथार्थ वर्णन नहीं, परन्तु महान् फल देनेवाला भजन समझ कर भगवत्कृणा के बल पर ही) मैं श्रीरामचन्द्र जी के चरणों में सिर नवाकर श्रीरघुनाथ जी के गुणों की कथा कहूँगा।

मेरा भी यही बल है। श्रीरामकृष्ण का भी चरित्र अपार है। श्रीरामकृष्ण भी 'एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानन्द परधामा' हैं। वे भी कृपा सिन्धु हैं। उन्होंने लोक-हित के लिए ही शरीर धारण किया और नरेन्द्र (स्वामी विवेकानन्द) आदि भक्तों पर अशेष कृपा की एवं कभी उन पर क्रोध नहीं किया। उन्होंने लोगों को ईश्वर-साक्षात्कार करने का सम्बल प्रदान किया। श्रीरामकृष्ण की महिमा का वर्णन करते हुए महात्मा गाँधी कहते हैं—''श्रीराकृष्ण की जीवनकथा धर्म को व्यवहार में लाने की कथा है। उनका जीवन हमें ईश्वर को आमने-सामने देखने की क्षमता प्रदान करता है।''

जोसेफ कैम्पबेल का कथन है कि श्रीरामकृष्ण ने स्वर्ग के दरबाजे को खोल दिया और ईश्वरीय आनन्द का निर्झर बहा दिया (Sri Ramakrishna cut the hinges of the heavens and released the fou..tains of divine bliss)

रोम्या रोलाँ कहते हैं—The Man (Ramakrishna) was the consummation of two thousand years

of the spiritual life of three hundred million people. अर्थात् श्रीरामकृष्ण तीस करोड़ लोगों के दो हजार वर्षों के आध्यात्मिक जीवन की निष्पत्ति थे।

महर्षि अरविन्द ने उन्हें आध्यात्मिक अनुभूति का चरमोत्कर्ष–The acme of spiritual experience–कहा ।

थॉमस मर्टन का मंतव्य है–"You have to experience duality for a long time until you see it's not there. In this respect I am a Hindu. Ramakrishna has the solution." जब तक आपको अद्वैत का ज्ञान नहीं होता, एक लम्बे अर्से तक आपको द्वैत का अनुभव करना होगा। इस अर्थ में मैं एक हिन्दू हूँ। श्रीरामकृष्ण के पास समाधान है।

वस्तुतः जिस प्रकार हिमगिरि के उत्तुंग शिखर से पिघल कर निकलनेवाली हिम नदी गंगा का रूप धारण कर मैदानी क्षेत्र में हजारों मीलों तक बहती हुई करोड़ों व्यक्तियों को अपने जीवनदायी जल से परितृप्त करती रहती है, उसी प्रकार अपने जीवन के बहुलांश में समाधि के शीर्ष शिखर पर अधिष्ठित रहनेवाले भगवान श्रीरामकृष्ण भी मनुष्य के कष्टों को दूर करने के लिए करुणाभिभूत हो मानव के रूप में अवतरित हुए थे। उन्होंने अपनी जीवन-लीलाओं, आदर्शों एवं सन्देशों-उपदेशों के माध्यम से समग्र विश्व के मानव-प्राणी में ईश्वरीय चेतना जगाने की कृपा की, उसे अपनी दिव्यता का बोध करने की प्रेरणा दी और धर्म की संकीर्ण दीवारों के पार अध्यात्म के आलोकमय पथ पर विचरण करने का सुगममंत्र दिया। इन सब का मैं कैसे वर्णन कर सकता हूँ ! तथापि मैं आज के सन्दर्भ में श्रीरामकृष्ण की प्रयोजनीयता पर कुछ कहूँगा।

अक्सर लोग पूछते हैं, खासकर नयी पीढ़ी के लोग, स्कूल कॉलेज में पढ़ने वाले युवा छात्रगण, कि आज हम इक्कीसवीं सदी में प्रवेश कर गये हैं। ऐसी स्थिति में उन्नीसवीं सदी के मध्य के देवमानव श्रीरामकृष्ण हमें कौन-सी प्रेरणा दे सकते है ? इक्कीसवीं शताब्दी अर्थात् वैज्ञानिक सभ्यता, तकनीकी-प्रौद्योगिकी परिवेश, कम्प्यूटर की सभ्यता और भौतिक-दैहिक भोगों-उपभोगों की संस्कृति ! और श्रीरामकृष्ण अर्थात् कुछ धर्म-चेतनाओं के अस्थित-चर्ममय विग्रह । कहाँ भौतिक-दैहिक विलास-कुण्ड में नित्य नहाने की चाहत रखनेवाली, महानगरों की 'काया-कौंध' में चौधियाने वाली हमारी पीढ़ी के लोग और कहाँ कांचन-कामिनी के त्याग का श्रीरामकृष्ण का सूर्योन्मुखी संदेश-उपदेश ! कहाँ तालमेल है दोनों में ?

नयी मनीषा पीछे की ओर मुड़ना नहीं चाहती । चाहिए भी नहीं। नयी वैज्ञानिक दृष्टि, बौद्धिक चेतना, कर्मदक्षता उन्मुक्त जीवन शैली और तकनीकी विकास को छोड़कर, एक विलक्षण ऊर्जा के संभार से स्पन्दित आगत के आलोक से मुँह मोड़कर क्या हम मुट्ठी भर धर्मोपदेशों से आक्रान्त विगत के दामन को पकड़े रहकर संघर्षशीलता की नयी दुनिया में जीवित रह भी सकते हैं ? शायद नहीं । तो फिर श्रीरामकृष्ण हमारे जीवन में कहाँ उतर सकते हैं, कैसे उतर सकते हैं, क्यों उतर सकते हैं ? निश्चय ही ये प्रश्न युवाजनों को मथ देते हैं।

कहाँ एक अपढ़ अशिक्षित गँवार गरीब ब्राह्मण, मात्र ढाई रुपये प्रतिमाह पर रानी रासमणि के काली मन्दिर में सेवारत पुजारी, आधुनिक सभ्यता से कोसों दूर, कभी नग्न कभी अर्द्धनग्न होकर सदैव भावोन्माद में रहनेवाले रामकृष्ण और कहाँ अपार ऊर्जा और शक्ति से व्यस्त विद्युतकणों से चौंधियाने वाली रोशनी लेकर उतरती हुई इक्कीसवीं सदी की सभ्यता। नहीं, कोई तालमेल, कोई मिलन बिन्दु नहीं हैं दोनों में–सोचती है नयी पीढ़ी।

मगर ठहरिए । आतुरता में लिया गया निर्णय विनाशकारी, आत्मघाती और विध्वंसक सिद्ध हो सकता है। श्री रामकृष्ण इक्कीसवीं सदी के मानव, मानव सभ्यता और विश्वजीवन के लिए एक अनुपेक्षणीय अनिवार्यता हैं, एकान्त अवश्यकता हैं, क्यों ?

इक्कीसवीं सदी विज्ञान की सदी होगी, कार्यक्षमता और तर्कसम्मत, बुद्धिगम्य वैचारिकता की सदी होगी, बौद्धिक ऊर्जा से उपलब्ध संसाधनों के उन्मुक्त भोग की सदी होगी। यह सदी उस नदी की भांति होगी जिसके प्रवाह में ठहराव या पड़ाव नहीं, केवल आकुल गतिशीलता होगी, हर पिछली लहर अगली लहर को ठेलती-धकेलती आगे बढ़ने को आतुर, विकल होगी और वह भी बिना यह जाने कि इस आतुर यात्रा का अन्तिम लक्ष्य क्या है, इस महाभिनिष्क्रमण का चरम उद्देश्य क्या है।

क्या श्रीरामकृष्ण में बौद्धिक ऊर्जा नहीं थी ? क्या उनकी दृष्टि वैज्ञानिक नहीं थी ? क्या उनकी जीवन शैली सत्य के उद्घाटन के लिये सतत् समर्पित नहीं थी ? जरा हम विचारें ।

इक्कीसवी सदी की सभ्यता मानव मस्तिष्क की उस साधना या शिक्षण की प्रस्तुति या उपज होगी जिसे हम विज्ञान कहते हैं। किन्तु विज्ञान है क्या ? विज्ञान के दो पक्ष हैं–एक है विशुद्ध विज्ञान, वह विज्ञान जो एक आतुर जिज्ञासा के साथ प्रत्यक्ष अनुभवों के सत्य को जानने के लिए आन्तरिकतापूर्वक प्रयास करता है और दूसरा है प्रयुक्ति या प्रायोगिक विज्ञान, वह विज्ञान जिसमें

विशुद्ध विज्ञान के द्वारा उद्घाटित सत्य आविष्कार के रूप में मानव जीवन की तकनीकी सम्पन्नता के लिये कार्य करता है। प्रथम को ज्योतिर्मय विज्ञान (Science as lucifera) और दूसरे को फलीभूत विज्ञान (Science as Fructifera) कहते हैं। ज्ञान से शक्ति प्राप्त होती है और उस शक्ति के द्वारा हम प्रकृति की शक्तियों का नियमन करते हैं तथा अपने अनुकूल कार्यों को सम्पादन करते हैं। विशुद्ध विज्ञान की नयी खोज आगे चलकर प्रायोगिक विज्ञान में बदल जाती है। प्रकृति की शक्तियों के नियमन और मनोनुकूल संचालन में परिवर्तित हो जाती है। मानव मस्तिष्क की यह एक विलक्षण शक्ति है जिससे वह पहले प्रकृति में छिपे सत्य की खोज करता है और फिर उस खोज के द्वारा उसी प्रकृति की शक्ति का नियमन कर उसे अपनी सुविधा के लिये, सुखों के लिये संचालित करने लगता है। इस प्रकार एक पर एक सत्य का उद्घाटन करते हुए मानव आज नाभिकीय विज्ञान और अंतरिक्ष यात्रा तथा अंतरिक्ष-युद्ध के विलक्षण युग में पहुँच गया है।

किन्तु इस विज्ञान की अपनी सीमाएँ हैं। कुछ आधुनिक महान पदार्थ-वैज्ञानिकों की मान्यता है कि विज्ञान ने हमारे इर्द-गिर्द के जिस विश्व को उद्घाटित किया है वह इस जगत का केवल बाहरी पक्ष है। इस इन्द्रिय गोचर जगत के पीछे एक अदृश्यमान जगत भी है। विज्ञान केवल उन्हीं प्रतीयमान वस्तुओं का विवेचन करता है जो हमारी इन्द्रियों के समक्ष प्रकट है अथवा जिन्हें कुछ उपकरणों से हम अपनी इन्द्रियों के समक्ष प्रकट कर सकते हैं। विज्ञान केवल जगत् के दृश्यमान अंश को समझने तथा इसकी ऊर्जाओं को मानवोपयोगी बनाने तक ही अपने को सीमित रखता है। किन्तु इन्द्रियातीत जगत को जाने विना हम जगत के मूल सत्य को जान हीं नहीं सकते हैं।

श्रीरामकृष्ण फलमय विज्ञान की अपेक्षा ज्योतिर्मय विज्ञान के साधक हैं। इतना ही नहीं, वे इन्द्रिय गोचर जगत की अपेक्षा इन्द्रियातीत जगत् के अंतर्निहित सत्यों को उद्घाटित करने के लिये अपने प्राणों की आतुरता गहरी आंतरिकता और तीव्र उत्कंठा से लीन होकर तब तक नहीं रुकते जब तक उस सत्य को जान नहीं लेते। इसी से उन्होंने 'चावल सब्जी' दिलाने वाली विद्या प्राप्त करने से अपनी किशोरावस्था में ही मुँह फेर लिया था।

सत्य की खोज में उद्विग्न आधुनिकता की समस्त विशिष्टताओं से सम्पन्न नरेन्द्रनाथ (स्वामी विवेकानन्द) जिस दिन श्रीरामकृष्ण के समक्ष उपस्थित हुए थे उस दिन मानो इक्कीसवीं सदी ही अपनी सीमाओं से उद्विग्न अधीर होकर चिरन्तन अलौकिक सत्य के शोधक के समक्ष नतमस्तक हुई थी।

औपनिषदिक युग में एक महाविद्यालय के अधिष्ठाता महर्षि शौनक ने ऐसी ही उद्विग्नता लेकर महर्षि अंगिरा के समक्ष उपस्थित हो जिज्ञासा की थी–कस्मिन्नु भग्वो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति।' (मुण्डक १/३) अर्थात् हे भगवन्, यह बतलाएँ कि किस एक को जान लेने पर सबकुछ जान लिया जाता है ? महर्षि अंगिरा ने कहा–द्वे विद्ये वेदितव्ये इति हस्म यद्ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च। तत्रापरा ऋग्वेदो, यजुर्वेद, सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। अथ परा यया तदक्षरम अधिगम्यते। अर्थात् विद्याएँ दो हैं–परा और अपरा। वेद शिक्षा, कल्प, व्याकरण निरुक्त, छन्द, ज्योतिष आदि अपरा विद्या हैं तथा जिससे वह अविनाशी परब्रह्म तत्व से जाना जाता है वह परा विद्या है। अपरा लौकिक विद्या है। यह विज्ञान का वह पक्ष है जिससे भौतिक दृश्यमान जगत को जाना जाता है। और परा वह विद्या है, विज्ञान का वह पक्ष है जिससे इन्द्रियातीत जगत के सत्य का उद्घाटन किया जाता है।

श्रीरामकृष्ण परा विद्या के साधक थे। विश्व के परा विद्या के साधकों के इतिहास में श्रीरामकृष्ण अद्वितीय थे। सत्य को जानने की ऐसी तीव्र पिपासा इनके पूर्व किसी में थी, मुझे नहीं मालूम। परा विद्या के किसी एक पक्ष को ही जानकार विश्व के महान साधक भगवान के रूप में मान्य हो गये। किन्तु श्रीरामकृष्ण को सत्यानुसंधान की यात्रा असीमित थी। उन्होंने सगुण साकार, सगुण निराकार, निर्गुण निराकार, द्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, सब की साधना की। शैव, शाक्त, तांत्रिक वैष्णव सभी पद्धतियों की साधना की। इतना ही नहीं, हिन्दू धर्म के बाहर ईसाई और इस्लाम धर्मों की भी साधना की। लगता है सत्य के परिज्ञान की इतनी गहरी पिपासा थी श्रीरामकृष्ण में कि वे किसी एक पथ पर चलकर ही विश्राम नहीं लेना चाहते। उस अनन्त को जानने परखने के जो भी मार्ग हो सकते हैं, वे सब पर चले। यह है विशुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि। यही है इक्कीसवीं सदी के मनुष्य के लिए एक दिशा संकेत। यह दृष्टि नहीं अपनाने पर हम केवल फलमय विज्ञान के पुजारी होकर भौतिक सुखों के एक निरीह भोक्ता हो जाएँगे। फिर तो इक्कीसवीं सदी हमारे दुःखों का कारण ही बनी रहेगी।

श्रीरामकृष्ण की वैज्ञानिक दृष्टि की एक और महिमा है। अनन्त को जानकर अखिल जगत को उसी सत्य के रूप में उन्होंने देखा। वे जगत में व्याप्त परम चैतन्य से एकमेक हो गये, सान्त होकर अनन्त से समरस हो गये।

इसी से डाल पर लगे फूल उन्हें ईश्वर पर चढ़े दिखते थे, दूब पर चलने में उन्हें कष्ट होता था और किसी मछुआरे की पीठ पर तमाचे लगने पर उनकी पीठ पर दाग उभर आता था। यानी विश्वचेतना से ही वे जुड़ गये थे। इक्कीसवीं सदी में अगर हमने यह दृष्टि नहीं पायी तो हमारी वैज्ञानिकता का दावा खोखला ही बना रहेगा।

एक बात और। अब तक के अवतार श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्री बुद्ध, श्री महावीर, मुहम्मद सभी जन्म से ही श्रीसम्पन्न थे। राजे, महाराजे थे। वे बड़े थे और मानव की तरह उन्होंने आचरण किया था। इसी से उनके कर्म लीला थे। किन्तु श्रीरामकृष्ण जन्म से निर्धन थे, विपन्न थे, दरिद्र थे। वे जन्म से मनुष्य थे और उन्होंने ईश्वर की भाँति आचरण किया था। एक मनुष्य अपने को कैसे ईश्वर बना सकता है, श्रीरामकृष्ण ने प्रदर्शित कर दिखाया। यही हमारे जीवन का उद्देश्य होना चाहिए। हम मनुष्य हैं, भोग के लिये नहीं, हम मनुष्य है देवत्व में रूपान्तरित होने के लिये। और स्वयं देवता बनकर श्रीरामकृष्ण संतुष्ट नहीं होते हैं। वे श्री सारदा देवी की पूजा जगद्धात्री के रूप में करके उन्हें भी मानुषी से भवतारिणी बना देते हैं। अर्थात् स्वयं देवत्व प्राप्त करना काफी नहीं है, हमें देवत्व प्राप्त कर सबको उसी महत रूप में प्रतिष्ठित कर देना होगा। यह है सच्ची वैज्ञानिकता, सच्ची सत्यानुसंधान की दृष्टि। इक्कीसवीं सदी में अगर हम इस दृष्टि को लेकर प्रवेश नहीं करते तो इक्कीसवीं सदी का नारा एक भूखा रसहीन कोलाहल मात्र होकर रह जाएगा।

भगवान श्रीरामकृष्ण से मेरी आंतरिक प्रार्थना है कि वे हमें वह वैज्ञानिक चेतना प्रदान करें जिससे हम जगत में अन्तर्निहित परम सत्य को शोधकर स्वयं देवत्व में ढाल सकें तथा अखिल जड़ चेतन के साथ एकात्मता का बोध कर जीवन और जगत को धन्यता प्रदान कर सकें। जय श्रीरामकृष्ण ।

❑

<u>बोध कथा</u>

हिन्दी-तुरुक भेद कछु नाहीं

प्रयाग में स्वामी प्रपन्नाचार्य नामक एक महान् संत हो गये हैं। उनकी त्याग-वृत्ति तथा पाण्डित्य से लोग बड़े प्रभावित थे। प्रयाग में जब माघ का मेला लगता, तब वे शिविर लगाते और मध्याह्न के समय भगवान् को भोग लगाकर उपस्थित लोगों में प्रसाद बाँटते। यह काम उनके प्रिय शिष्य गोविन्दजी, जो आगे चलकर परमार्थभूषण गोविन्दाचार्य के नाम से प्रसिद्ध हुए, द्वारा किया जाता था।

एक बार गोविन्दजी प्रसाद का वितरण कर रहे थे कि स्वामीजी को बाहर कोलाहल सुनायी दिया। उन्होंने गोविन्दजी को बुलाकर कोलाहल का कारण पूछा। गोविन्दजी ने कहा, ''महाराज ! एक मियाँ आइ गवा रहा। ओही से बतियाव हुई गवा।''

''काहे ?'' स्वामीजी ने आश्चर्य से पूछा।

''महाराज ! ऊ परशाद माँगत रहा !''

''तो ओह का परशाद दिया की नाहीं ?''

''नही महाराज !''

''काहे ?''

''महाराज ! ऊ जो मुसलमान रहा।''

यह सुनते ही महाराज को पश्चाताप हुआ। वे बोले, ''गोविन्द ! हम तुमका गीता नहीं पढ़ावा ? गीता मां भगवान कहिन हैं–'अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।' तब तू ओह में बिराजमान वैश्वानररूपी नारायण का भोजन कर तेऊं कि मुसलमान का ? एही तुम गीता समझे हो ? भोजन तो नारायण का जात है–ना हिन्दू का, न मुसलमान का ! परशाद देत मां कोई भेद न करो! जावं ओह का परशाद देऊ आवा।''

गोविन्दजी जब दरवाजे पर गये, तो वह व्यक्ति चला गया था। गोविंदजी उसे ढूँढकर ले आये और उससे क्षमा माँगकर उन्होंने पेट भर भोजन कराया।

–दिव्यायन समाचार से साभार

विश्व को भारत का सन्देश

मेरे प्रिय देशवासियो, पाश्चात्य लोगों के लिए मेरा सन्देश ओजस्वी रहा; तुम्हारे लिए मेरा सन्देश उससे भी अधिक ओजस्वी है। मैंने यथाशक्ति प्रयत्न किया है कि नवीन पश्चिमी राष्ट्रों के लिए पुरातन भारत का सन्देश मुखरित करूँ—भविष्य निश्चित रूप से बताएगा कि मैंने यह कार्य सम्यक् रूप से सम्पन्न किया या नहीं; पर उस अनागत भविष्य के सशक्त-सबल स्वरों का कोमल, पर स्पष्ट मर्मर अभी से सुनाई देने लगा है— भावी का सन्देश वर्तमान भारत के लिए; और जैसे-जैसे दिन बीतते हैं, यह मर्मर ध्वनि सबलतर स्पष्टतर होती जाती है।

जिन विविध जातियों को देखने-समझने का सौभाग्य मुझे मिला, उनके बीच मैंने अनेक आश्चर्यजनक संस्थाओं, प्रथाओं, रीति-रिवाजों और शक्ति तथा बल की अद्‌भुत अभिव्यक्तियों का अध्ययन किया है; पर इन सब में सर्वाधिक विस्मयकारी यह उपलब्धि थी कि रहन-सहन, प्रथाओं, संस्कृति और शक्ति की इन बाह्य विभिन्नताओं— इन ऊपरी विभेदों के अंतराल में, एक ही प्रकार के दुःख-सुख से, एक ही प्रकार की शक्ति और दुर्बलता से अनुप्रेरित वही महौजस मानव हृदय स्पंदित है।

शुभ और अशुभ सर्वत्र हैं, और दोनों के पलड़े अद्‌भुत रूप से बराबर हैं। पर सर्वत्र सर्वोपरि है मनुष्य की महिमामयी आत्मा, जो उसकी ही भाषा में बोलनेवाले किसी भी व्यक्ति को समझने में कभी नहीं चूकती। हर जगह ऐसे नर-नारी हैं, जिनका जीवन मानव-जाति के लिए वरदान है और जो दिव्य सम्राट् के इन शब्दों को सत्य सिद्ध करते हैं। 'प्रत्येक देश में ब्राह्मणों और श्रमणों का निवास है।'

जो केवल शुद्ध और निष्काम आत्मा द्वारा ही सम्भव है उस प्रेम के साथ मेरा स्वागतसत्कार करनेवाले उन अनेक सहृदय पुरुषों के लिए मैं पाश्चात्य देशों का आभारी हूँ। पर मेरे जीवन की निष्ठा तो मेरी इस मातृभूमि के प्रति अर्पित है। और यदि मुझे हजार जीवन भी प्राप्त हों, तो प्रत्येक जीवन का प्रत्येक क्षण, मेरे देशवासियो, मेरे मित्रो, तुम्हारी सेवा में अर्पित रहेगा।

क्योंकि मेरा जो कुछ भी है—शारीरिक, मानसिक और आत्मिक—सब का सब इसी देश की देन है; और यदि मुझे किसी अनुष्ठान में सफलता मिली है, तो कीर्ति तुम्हारी है, मेरी नहीं। मेरी अपनी तो केवल दुर्बलताएँ और असफलताएँ है; क्योंकि जन्म से ही जो महान् शिक्षाएँ इस देश में व्यक्ति को अपने चतुर्दिक् बिखरी और छायी मिलती हैं, उनसे लाभ उठाने की मेरी असमर्थता से ही इन दुर्बलताओं और असफलताओं की उत्पत्ति हुई है।

और कैसा है यह देश ! जिस किसी के भी पैर इस पावन धरती पर पड़ते हैं, वही, चाहे वह विदेशी हो, चाहे इसी धरती का पुत्र, यदि उसकी आत्मा जड़पशुत्व की कोटि तक पतित नहीं हो गई तो, अपने आपको पृथ्वी के उन सर्वोत्कृष्ट और पावनतम पुत्रों के जीवन्त विचारों से घिरा हुआ अनुभव करता है, जो शताब्दियों से पशुत्व को देवत्व तक पहुँचाने के लिए श्रम करते रहे हैं और जिनके प्रादुर्भाव की खोज करने में इतिहास असमर्थ है। यहाँ की वायु भी आध्यात्मिक स्पंदनों से पूर्ण है। यह धरती दर्शनशास्त्र, नीतिशास्त्र और आध्यात्मिकता के लिए, उन सब के लिए जो पशु को बनाए रखने के हेतु चलनेवाले अविरत संघर्ष से मनुष्य को विश्राम देता है, उस समस्त शिक्षा-दीक्षा के लिए जिससे मनुष्य पशुता का जामा उतार फेंकता और जन्म-मरणहीन सदानन्द अमर आत्मा के रूप में आविर्भूत होता है,—पवित्र है। यह वह धरती है, जिसमें सुख का प्याला परिपूर्ण हो गया था और दुःख का प्याला और भी अधिक भर गया है; अन्ततः यहीं सर्वप्रथम मनुष्य को यह ज्ञान हुआ कि यह तो सब निस्सार है; यहीं सर्वप्रथम यौवन के मध्यान्ह में, वैभव-विलास की गोद में, ऐश्वर्य के शिखर पर और शक्ति के प्राचुर्य में मनुष्य ने माया की शृंखलाओं को तोड़ दिया। यहीं, मानवता के इस महासागर में, सुख और दुःख, शक्ति और दुर्बलता, वैभव और दैन्य, हर्ष और विषाद, स्मित और आँसू तथा जीवन और मृत्यु के प्रबल तरंगाघातों के बीच, चिरंतन शान्ति और अनुद्विग्नता की घुलनशील लय में, त्याग का राजसिंहासन आविर्भूत हुआ। यहीं इसी देश में जीवन और मृत्यु की, जीवन की तृष्णा की, और जीवन के संरक्षण के निमित्त किये गए मिथ्या और विक्षिप्त संघर्षों की महान् समस्याओं से सर्वप्रथम जूझा गया और उनका समाधान किया गया— ऐसा समाधान जो न भूतो न भविष्यति—क्योंकि यहाँ पर, और केवल यहीं पर इस तथ्य की उपलब्धि हुई कि जीवन भी स्वतः एक अशुभ है, किसी एकमात्र सत् तत्त्व की छाया मात्र। यही वह देश है, जहाँ, और केवल जहाँ पर धर्म व्यावहारिक और यथार्थ था; और केवल यहीं पर नर-नारी लक्ष्य-सिद्धि के लिए-परम

पुरुपार्थ के लिए साहसपूर्वक कर्मक्षेत्र में कूदे, जैसे अन्य देशों में लोग अपने से दुर्बल अपने ही बंधुओं को लूटकर जीवन के भोगों को प्राप्त करने के लिए विक्षिप्त होकर झपटते हैं। यहाँ, और केवल यहीं पर मानवहृदय इतना विस्तीर्ण हुआ कि उसने केवल मनुष्य-जाति को ही नहीं, वरन् पशु, पक्षी और, वनस्पति तक को भी अपने में समेट लिया—सर्वोच्च देवताओं से लेकर बालू के कण तक, महानतम और लघुतम सभी को मनुष्य के विशाल और अनन्त वर्द्धित हृदय में स्थान मिला। और केवल यहीं पर मानवात्मा ने इस विश्व का अध्ययन एक अविच्छिन्न एकता के रूप में किया, जिसका हर स्पंदन उसका अपना स्पंदन है।

हम सभी भारत के पतन के सम्बन्ध में बहुत कुछ सुनते हैं। एक समय था, जब मैं भी इसमें विश्वास करता था। पर आज अनुभव की अग्रभूमि पर खड़े होकर, बाधात्मक पूर्व परिकल्पनाओं से दृष्टि को मुक्त करके, और सर्वोपरि, अन्य देशों के अतिरंजित चित्रों को प्रत्यक्ष सम्पर्क द्वारा उचित प्रकाश और छायाओं में देखकर मैं, अत्यन्त विनम्रता के साथ, स्वीकार करता हूँ कि मैं गलत था। आर्यों के ऐ पावन देश ! तू कभी पतित नहीं हुआ। राजदण्ड टूटते रहे और फेंक दिये जाते रहे हैं, शक्ति का कन्दुक एक हाथ से दूसरे हाथ में उछलता रहा हैं, पर भारत में राजदरबारों और राजाओं का प्रभाव सर्वदा थोड़े से लोगों को छू सका है—उच्चतम से निम्नतम तक जनता की विशाल राशि अपनी अनिवार्य जीवनधारा का अनुगमन करने के लिए मुक्त रही है, और राष्ट्रीय जीवनधारा कभी मन्द और अर्द्धचेतन गति से और कभी प्रबल और प्रबुद्ध गति से प्रवाहित होती रही है। उन बीसों ज्योतिर्मय शताब्दियों का अटूट शृंखला के सम्मुख मैं तो विस्मयाकुल हो खड़ा हूँ, जिनके बीच यहाँ-वहाँ एकाध धूमिल कड़ी है, जो अगली कड़ी को और भी अधिक ज्योतिर्मय बना देती है और इनके बीच इनकी गति में अपने सहज महिमामय पदक्षेप के साथ प्रगतिशील है मेरी यह जन्मभूमि—अपने यशोपूरित लक्ष्य की सिद्धि के लिए—जिसे धरती या आकाश की कोई शक्ति रोक नहीं सकती—पशु-मानव को देव-मानव में रूपांतरित करने के लिए।

हाँ, मेरे बन्धुओ, यही गौरवमय भाग्य (हमारे देश का है), क्योंकि उपनिषद्युगीन सुदूर अतीत में, हमने इस संसार को एक चुनौती दी थी। 'न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः—'न तो संतति द्वारा और न सम्पत्ति द्वारा, वरन् केवल त्याग द्वारा ही अमृतत्व की उपलब्धि होती है।' एक के बाद दूसरी जाति ने इस चुनौती को स्वीकार किया और अपनी शक्ति भर संसार की इस पहेली को कामनाओं के स्तर पर सुलझाने का प्रयत्न किया। वे सब की सब अतीत में तो असफल रही हैं—पुरानी जातियाँ तो शक्ति और स्वर्ग की लोलुपता से उद्भूत पापाचार और दैन्य के बोझ से दबकर पिस-मिट गईं, और नयी जातियाँ गर्त में गिरने को डगमगा रही हैं। इस प्रश्न का तो हल करने के लिए अभी शेष ही है कि शान्ति की जय होगी या युद्ध की, सहिष्णुता की विजय होगी या असहिष्णुता की, शुभ की विजय होगी या अशुभ की, शरीर की विजय होगी या बुद्धि की, सांसारिकता की विजय होगी या आध्यात्मिकता की। हमने तो युगों पहले इस प्रश्न का अपना हल ढूँढ़ लिया था और सौभाग्य या दुर्भाग्य के मध्य हम अपने इस समाधान पर दृढ़ारूढ़ हैं और कालान्त तक उस पर दृढ़ रहने का संकल्प किये हुए हैं। हमारा समाधान है : असांसारिकता—त्याग।

भारतीय जीवन-रचना का यही प्रतिपाद्य विपय है, उसके अनन्त संगीत का यही दायित्व है, उसके अस्तित्व का यही मेरुदण्ड है, उसके जीवन की यही आधारशिला है, उसके अस्तित्व का एकमात्र हेतु—मानव जाति का आध्यात्मीकरण। अपने इस लम्बे जीवन-प्रवाह में भारत अपने इस मार्ग से कभी भी विचलित नहीं हुआ, चाहे तातारों का शासन रहा हो और चाहे तुर्कों का, चाहे मुगलों ने राज्य किया हो और चाहे अंग्रेजों ने।

और मैं चुनौती देता हूँ कि कोई भी व्यक्ति भारत के राष्ट्रीय जीवन का कोई भी ऐसा काल मुझे दिखा दे, जिसमें यहाँ समस्त संसार को हिला देने की क्षमता रखनेवाले आध्यात्मिक महापुरुषों का अभाव रहा हो। पर भारत का कार्य आध्यात्मिक है : और यह कार्य रण-भेरी के निनाद से या सैन्यदलों के अभियानों से तो पूरा नहीं किया जा सकता। भारत का प्रभाव धरती पर सर्वदा मृदुल ओस-कणों की भाँति बरसा है, नीरव और अव्यक्त, पर सर्वदा धरती के सुन्दरतम सुमनों को विकसित करनेवाला। प्रकृत्या मृदुल होने के कारण विदेशों में जाने (—प्रभविष्णु होने) के लिए इसे परिस्थितियों के एक सुयोगपूर्ण संघटन की प्रतीक्षा करनी होगी; यद्यपि अपने देश की सीमा के भीतर इसकी सक्रियता कभी बन्द नहीं हुई। इसलिए प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति जानता है कि जब कभी साम्राज्य-निर्माता तातार या

ईरानी, या यूनानी अथवा अरब लोग इस देश को बाह्य संसार के सम्पर्क में लाये, तभी व्यापक आध्यात्मिक प्रभाव की एक लहर यहाँ से समूचे संसार पर फैल गयी। ठीक वही परिस्थितियाँ एकबार फिर आकर सम्मुख खड़ी हो गयी हैं। धरती और सागर पर अंग्रेजों के यातायात-मार्ग और उस छोटे से द्वीप के निवासियों द्वारा प्रदर्शित अद्‌भुत शक्ति ने एक बार फिर भारत को शेष संसार के सम्पर्क में ला दिया है, और वही काम फिर से प्रारम्भ हो चुका है। मेरे शब्दों पर ध्यान दो- यह तो केवल अल्प प्रारम्भ मात्र है; महान् सिद्धियाँ बाद में उपलब्ध होंगी; यह तो मैं निश्चित रूप से नहीं कह सकता कि भारत के बाहर हमारे वर्तमान कार्य का परिणाम क्या होगा, पर इतना तो मैं निश्चित रूप से जानता हूँ। प्रत्येक सभ्य देश में लाखों—मैं जान-बूझकर कहता हूँ—लाखों व्यक्ति उस सन्देश की प्रतीक्षा कर रहे हैं, जो उन्हें भौतिकता के उस घृणित गर्त में गिरने से बचा लेगा, जिसकी ओर आधुनिक अर्थोपासना उन्हें आँख मूँदकर ढकेल रही है; और नवीन सामाजिक आन्दोलनों के अनेक अग्रणी पहले ही से समझ चुके हैं कि केवल वेदान्त ही अपने सर्वोच्च रूप में उनकी सामाजिक आकांक्षाओं को आध्यात्मिकता प्रदान कर सकता है। अन्त में मुझे इस विषय की ओर लौटना होगा। इसलिए मैं दूसरा महान् विषय उठाता हूँ—देश के भीतर कर्तव्य कर्म।

समस्या के दो पहलू हैं : जिन विविध तत्त्वों से राष्ट्र निर्मित है, उनका न केवल आध्यात्मीकरण, बल्कि उनको आत्मसात करना भी। प्रत्येक राष्ट्र के जीवन में विभिन्न जातियों का आत्मसात किया जाना—समन्वय—एक सामान्य समस्या रही है।

❑

श्रीरामकृष्ण जन्मोत्सव पर विशेष

यदि श्रीरामकृष्ण न होते तो

—स्वामी शशांकानन्द

श्रीरामकृष्ण यदि अवतरित न होते तो क्या होता ? ऐसा जानने के लिए हमें आज के संदर्भ में तत्कालीन परिस्थितियों को समझना होगा जिसकी जीती जागती प्रतिमूर्ति थे नरेन्द्र नाथ। भारत तब एक पराधीन देश था। भारत पर फिरंगियों का पूरा कब्जा हो चुका था। मनुष्य बनाने वाली, चरित्र निर्माण वाली शिक्षा लुप्त हो चुकी थी और लार्ड मैकोले की लाई हुई शिक्षा ने नौकर होने की शिक्षा के साथ-साथ पाश्चात्य विज्ञान और पाश्चात्य दर्शन का प्रवेश कराया था। युवकों के मन में भारतीय संस्कृति और परम्पराओं के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न होने से वे निरर्थक, संकीर्ण और त्याज्य लगने लगी थीं। पाश्चात्य जड़-विज्ञान और दर्शन की प्रबल युक्ति से प्रभावित युवकों में प्राचीन भारतीय संस्कृति और सभ्यता के प्रति बदलते हुए भाव भारत के भविष्य के लिए चुनौती थे। उस समय का युवा समाज बदलाव की वाढ़ में बहने लगा था। उसी प्लावन में बहता हुआ युवक था नरेन्द्र नाथ।

श्री सत्येन्द्र नाथ मजुमदार द्वारा लिखित पुस्तक विवेकानन्द चरित में इस भाव का वर्णन इस प्रकार मिलता है; ''पाश्चात्य विज्ञान और दर्शन शास्त्रों की आलोचना ने नरेन्द्र नाथ के हृदय में एक विराट आँधी पैदा कर दी। उनका जन्मगत संस्कार और हृदय में गहरा भिदा हुआ विश्वास चारों ओर की स्थिति के संघर्ष में आकर डगमगाने लगा। अन्तर्निहित भावों के साथ इस प्रकार का प्रबल संघर्ष स्थूल विचार वाले विद्यार्थियों की धारणा से परे था। डॉ० ब्रजेन्द्र नाथ सील आदि कुछ अंतरंग मित्र ही उसे विशेष रूप से जानते थे।''

स्थूल बुद्धि वाले युवकों की भाँति पाश्चात्य विचारों की प्रबल आँधी में न बहकर नरेन्द्र का मन उस आँधी से जूझने लगा था। उसके मन में विद्रोह उत्पन्न हुआ और उस प्रबल आँधी और तूफान से यह छोटा सा दीपक डगमगा रहा था।

डेकार्ट के अहंवाद, ह्यूम और बेन की नास्तिकता, डार्विन के विकासवाद और हर्बर्ट स्पेन्सर के अज्ञेयवाद के विचारों ने नरेन्द्र नाथ को झकझोर दिया था।

इधर राजा राम मोहन राय, देवेन्द्र नाथ टैगोर आदि ने हिन्दूधर्म के दोषों को देखा और उसमें सुधार लाने के लिए हिन्दू धर्म की नयी व्याख्या की। देवेन्द्र नाथ ने वेद की प्रामाणिकता अस्वीकार कर केवल व्यक्तिगत विचारबुद्धि को ही एकान्तिक रूप से सत्यासत्य और धर्माधर्म की मीमांसा का एक मात्र प्रमाण माना। गुरु का कोई स्थान नहीं, सीधे प्रत्यक्ष ब्रह्म कृपा से सिद्धि की सम्भावना बतायी। उन्होंने 18वीं शताब्दी के यूरोपीय युक्तिवाद पर ही ब्रह्मधर्म को खड़ा किया। मूर्ति-पूजा का खण्डन किया और धीरे-धीरे हिन्दू-धर्म से ब्रह्म समाज अलग हो गया। १८६६ ई० में ब्रह्म-समाज के दो भाग हो गए। आदि ब्रह्म समाज महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर के पास रह गया और केशव चन्द्र सेन का ब्रह्म-समाज ''भारतवर्षीय ब्रह्म समाज'' कहलाने लगा।

केशवचन्द्र की ईसाई धर्म-प्रीति से प्रभावित होकर ब्रह्म-साधकगण पाप-बोध, पाप-भय, पश्चात्ताप, भावों के आवेश में रोना आदि को आध्यात्मिक उन्नति में सहायता मानने लगे। ब्रह्म-समज के आचार्य एवं उपाचार्यगण हिन्दू धर्म एवं समाज को अभिशाप देने लगे और कट्टरपन्थियों से भिड़ रहे थे।

इन परिस्थितियों में नरेन्द्र नाथ के मन में एक ओर डेकार्ट, ह्यूम, बेन, डार्विन एवं हर्बर्ट स्पेन्सर के विचार नास्तिकवाद की ओर खींचकर ईश्वर, वेद, भारतीय संस्कृति के प्रति संदेह उत्पन्न कर रहे थे, तो दूसरी ओर ब्रह्म-समाज आंदोलन उसकी सत्यान्वेषी बुद्धि को प्रोत्साहन दे रहा था।

नरेन्द्रनाथ की मनोदशा ने उसे एक चुनौती के सामने खड़ा कर दिया। केवल विचार-बुद्धि की सहायता से या दार्शनिक ग्रन्थों के अध्ययन से, विभिन्न दार्शनिकों के विचार जानने से सत्य की खोज नहीं हो सकती, सूक्ष्म दार्शनिक तत्त्वों की मीमांसा इसका उपाय नहीं है।

यह नरेन्द्रनाथ का ही नहीं, इस युग के युवा-समाज का प्रश्न था। क्या ईश्वर है ? क्या ईश्वरानुभूति सत्य है या कल्पना मात्र ? शास्त्र क्या कवियों की कोरी कल्पना मात्र है। मानव जीवन का उद्देश्य क्या है ? इन प्रश्नों ने नरेन्द्र को पागल सा बना दिया। अब वह एक ऐसे व्यक्ति की खोज में भटकने लगा जो उसे उसके प्रश्नों का उत्तर दे सके।

जब कभी कोई धर्म-प्रचारक धर्म या ईश्वर के सम्बन्ध में भाषण देते, तो नरेन्द्र नाथ अपने अशान्त हृदय की व्याकुलता के साथ उनसे प्रश्न कर बैठते, ''महाशय, क्या आपने ईश्वर के दर्शन किए हैं ?'' आध्यात्मिक गुरु इस विचित्र प्रश्न कर्त्ता का मुख देखते

रह जाते। न 'हाँ' कह सकते थे और न 'ना' ही। कुछ उपदेश देकर टाल देते। उनकी पूँथीगत विद्या (किताबी ज्ञान) के पास इसका कोई उत्तर न था। पाश्चात्य जड़ विज्ञान एवं दर्शन की प्रबल युक्तियाँ भी अतीन्द्रिय राज्य के इन रहस्यमय प्रश्नों के सामने केवल मूक ही रह गईं।

जड़-विज्ञान ईश्वर को इन भौतिक चक्षुओं से देखना चाहता है, पाश्चात्य दर्शन उसे तर्क की कसौटी पर रखना चाहता है। अतीन्द्रिय राज्य के बारे में अनभिज्ञ धर्म नेता नरेन्द्र के मन की पिपासा शान्त न कर सके। वह ब्रह्म-समाज गया। वहाँ का सदस्य बन ब्रह्म-आचार्यों के उपदेश ग्रहण करता था। परन्तु कुछ बँधे हुए मतवादों एवं नियमित उपासना द्वारा नरेन्द्र नाथ के मन में उठती आँधी शान्त न हुई, क्योंकि, त्याग और ज्वलन्त आध्यात्मिक अनुभूति का ब्रह्म-समाज में अभाव था।

नरेन्द्र ध्यान-प्रिय थे। महर्षि देवेन्द्र नाथ के निकट गए तो उन्होंने नरेन्द्र को ध्यान करने का उपदेश किया। नरेन्द्र का ध्यानानुराग कई गुणा बढ़ गया और नरेन्द्र पढ़ाई करने के बहाने अपना समय एक किराये के कमरे में एकान्त अध्ययन, संगीत चर्चा और साधन भजन में व्यतीत करने लगे। परन्तु, उन्हें अन्धकार ही अन्धकार प्रतीत हुआ। जहाँ भी, जिसके पास भी गए, उन्हें एक ही अनुभूति हुई कि क्या सारा जगत केवल अन्धकार में भटक रहा है ? क्या कोई नहीं, जिसने कभी सत्य को जाना हो और मुझे रास्ता दिखा दे।

''अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः।
दन्द्रम्यमानाः परियन्ति मूढ़ा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः॥''

कठोपनिषद-१/२/५ की यह बात सत्य प्रतीत होने लगी कि–''चारों ओर अविद्या से घिरे हुए, अपनी समझ में बड़े बुद्धिमान बने हुए और स्वयं को पण्डित मानने वाले मूढ़, अन्धे के नेतृत्व में चलने वाले अन्धों के समान अनेक कुटिल रास्तों पर भटकते रहते हैं।''

परिस्थिति सीता स्वयंवर जैसी ही थी। ऐसे युवराज की खोज थी जो शिव धुनष को तोड़ दे, ताकि सीता का विवाह हो सके, राजा जनक अपने दायित्व से मुक्त हों। पर कोई भी राजा या युवराज शिव धनुष हिला भी न सका। राजा जनक की सभा में खामोशी छा गयी। निराशा में डूबी हुई जनक सभा में शोक और पश्चाताप की वाणी राजा जनक के मुर्झाये हुए मुख से निकली।

श्रीहत भए हारि हियँ राजा।
बैठे निज निज जाइ समाजा॥
नृपन्ह बिलोकि जनक अकुलाने।
बोले बचन रोष जनु जाने॥
अब जनि कोउ माखै भट मानी।
बीर बिहीन मही मैं जानी॥
तजहु आस निज निज गृह जाहू।
लिखा न बिधि बैदेहि बिबाहू॥

हारे हुए राजाओं को अपने-अपने स्थान पर लौट कर बैठे हुए देख राजा जनक अकुलाकर रोष में भरे कह उठे, ''अब कोई वीरता का अभिमानी बुरा न माने। मैंने जान लिया कि पृथ्वी पर कोई वीर ही नहीं है, अतः अब अपने-अपने घर लौट जाओ, सीता का विधि ने विवाह लिखा ही नहीं है।

आज के भौतिकवादी विज्ञान एवं पाश्चात्य दार्शनिक विचारों से प्लावित संदेहवादी युग में प्रकृत आध्यात्मिक अनुभूति के बल पर अतीन्द्रिय राज्य की प्राप्ति के लिए सब संशयों का भंजन कर सत्य का रास्ता बताने वाला जब कोई न मिला तो विश्व का भविष्य क्या होगा ? यही चिन्ता नरेन्द्रनाथ के मन में फैल गयी।

अब दो ही बातें थीं। एक तो यह कि भौतिकवादी चिन्ताधारा में चार्वाक का अनुयायी बन कर ''खाओ, पीओ और मजा करो'', इसी भावधारा का साम्राज्य पृथ्वी पर हो, या कोई ऐसी व्यक्ति मिले जो सत्य का द्वार खोल दे और मानव अतीन्द्रिय राज्य में प्रवेश कर सत्यानुभूति की उपलब्धि कर जीवन की सार्थकता की प्राप्ति करे। यदि ऐसा व्यक्ति न मिले तो आने वाले युग में नास्तिकवाद, शोषण, अत्याचार, अनाचार, अन्याय, स्वार्थपरता, भ्रष्टाचार का राज होगा जिसके नारकीय वातावरण में हमें पशु, कीट पतंग की तरह जीते रहना होगा। नरेन्द्र नाथ के सामने एक ही उपाय था उस व्यक्ति की खोज जो भगवान श्रीराम की तरह शिव धनुष रूपी कठोर प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिए अध्यात्म की प्रत्यंचा चढ़ाकर संशयरूपी धनुष के टुकड़े कर दे और नरेन्द्र उस व्यक्ति की खोज में निकला तीव्र व्याकुलता से भरा हुआ।

महर्षि देवेन्द्र नाथ उस समय गंगा तट पर एक नौका में रहते थे। उनसे जाकर नरेन्द्र ने उन्मत्त की भाँति तीक्ष्ण दृष्टि से ध्यानस्थ महर्षि के प्रति उद्वेग और अवरुद्ध कण्ठ से पूछा, ''महाशय ! क्या आपने ईश्वर के दर्शन किये हैं ? महर्षि चौक उठे। यह तो युग प्रश्न था। इसके उत्तर की सारा जगत प्रतीक्षा कर रहा था। पर विस्मय-चकित महर्षि की झोली खाली थी और अन्त में केवल इतना ही कहा, ''नरेन्द्र, तुम्हारी आँखें देखकर समझ रहा हूँ कि तुम योगी हो।'' उन्होंने यह भी कहा, ''यदि नियमित रूप से ध्यान करते रहोगे तो ब्रह्मज्ञान के अधिकारी बन सकोगे।''

महर्षि के इस उत्तर ने नरेन्द्र को अत्यन्त निराश कर दिया। वह सोचने लगा, यदि महर्षि की तरह भक्ति

सम्पन्न, ईश्वर-प्रेमी भी आज तक ईश्वर के दर्शन नहीं कर सके, तो अब वे किसके पास जायँ ? तो क्या यह सब झूठ है–धर्म, ईश्वर आदि बातें मानव की कल्पना से उत्पन्न आकाश कुसुम की तरह मिथ्या हैं ? घर लौटकर नरेन्द्र नाथ दर्शन शास्त्र और धर्म सम्बन्धी सभी पुस्तकों को दूर फेंक देता है। यदि ये उन्हें ईश्वर प्राप्ति में सहायता न दे सकीं, तो व्यर्थ में उनके पाठ से क्या लाभ ?

पाठकों ! क्या आप यह महसूस नहीं करते कि यदि नरेन्द्रनाथ का प्रश्न कोई उत्तर न पाता तो आज जगत में धर्म को अफीम ही माना जाता, धर्म का आडम्बर मात्र ही रहता, प्रकृत धर्म रसातल में चला जाता और भौतिकवाद के प्लावन में मानव केवल विषयान्धकार में रेंगने वाला कीड़ा मात्र रह जाता, उसकी अन्तर्निहित दिव्यता सत्य होते हुए भी मानव की दृष्टि से दूर रह जाती। आज चार्वाक की दुन्दुभी बजती, "खाओ ! पीओ ! मजा करो। अपने पास न हो तो उधार ले लो, पर आनन्द करो। उधार लेकर देने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि मनुष्य मृत्यु के साथ समाप्त हो जाता है। पुनर्जन्म नहीं है, अन्य लोक नहीं है, अतः अगले जन्म में चुकाने का प्रश्न ही नहीं।" ऐसा नहीं कि आज ऐसा नहीं हो रहा है। पर मानव उस भौतिकवादी भावधारा में बह नहीं गया है, पुनः जाग्रत होकर दिव्यता की ओर बढ़ रहा है। यह इसलिए सम्भव हुआ कि नरेन्द्रनाथ के माध्यम से आज के ज्वलन्त प्रश्नों का उत्तर सारे जगत् में सूर्य की भाँति सब पर आशा की किरणें बरसा रहा।

जब असहनीय उत्कण्ठा लेकर नरेन्द्रनाथ भोर होते ही दक्षिणेश्वर की ओर दौड़ा और श्री रामकृष्ण परमहंस देव के सामने पहुँचा तो देखा ज्योतिर्मय, सदानन्द, महापुरुष। भक्त उनके मधुर वचनामृत का पान कर रहे हैं। नरेन्द्र ने वही प्रश्न, जो उसने अनगिनत धर्माचार्यों से किया था, किन्तु जिसका सन्तोष जनक उत्तर नहीं मिला था, श्रीरामकृष्ण देव से भी किया, "महाराज, क्या अपने ईश्वर को देखा है ?"

यही वह सन्धिक्षण है जब मानव के भविष्य की रचना होने वाली थी। अतीन्द्रिय राज्य का अनुसंधान पाने का रास्ता खुलने वाला था। आध्यात्मिकता मिथ्या नहीं, वास्तविकता है, इसका प्रमाण मिलने वाला था। नरेन्द्र अत्यन्त उत्कण्ठा से श्रीरामकृष्ण की ओर उत्तर की अपेक्षा करते हुए देखता है। प्रश्न सुनते ही मधुर मुसकान से प्रशान्त मुख मण्डल अपूर्व शान्ति और दृढ़ता की आभा से उद्भासित हो उठा। उन्हें न प्रश्न ने विस्मयचकित किया और न ही उन्हें सोचना पड़ा। उन्होंने अविलम्ब उत्तर दिया, "हाँ ! बेटा मैंने ईश्वर का दर्शन किया है। तुम्हें जिस प्रकार प्रत्यक्ष देख रहा हूँ, इससे भी कहीं अधिक स्पष्ट रूप से उन्हें देखा है।"

आज विश्व को एक ऐसा व्यक्ति मिला जिसने शास्त्र ज्ञान, तर्क, भौतिक विज्ञान और पाश्चात्य दर्शनों से भी परे अतीन्द्रिय अनुभूति की थी। अंधकार में प्रकाश की एक छोटी सी किरण पृथ्वी पर पड़ी। वही किरण असंख्य रश्मियों में विकीर्ण हो गयी जब श्री रामकृष्ण ने कहा, "यदि तुम चाहो तो तुम्हें भी दिखा सकता हूँ।" इतना ही नहीं श्रीरामकृष्ण ने संकेत किया कि ईश्वर प्राप्ति केवल उनके द्वारा या नरेन्द्र द्वारा ही नहीं, बल्कि प्रत्येक मानव के जीवन का उद्देश्य है। जब तक ईश्वर प्राप्ति नहीं होती, मनुष्य जन्म मरण के चक्कर में पड़ा रहेगा। अतः ईश्वर सत्य है, देखा जा सकता है, ईश्वर प्राप्ति जीवन का उद्देश्य है। सभी धर्म सत्य हैं, जितने मत उतने पथ। ईश्वर सभी जीवों में विराजमान हैं। शिव ज्ञान से जीव की सेवा मुक्ति का मार्ग है। श्रीरामकृष्ण देव की यह वाणी ही आज के युग के मानव की जीवन-यात्रा में पाथेय है।

❑

"इस युगधर्म के प्रवर्तक श्री भगवान् रामकृष्ण पहले के समस्त युगधर्म-प्रवर्तकों के पुनः संस्कृत प्रकाश हैं। हे मानव, इस पर विश्वास करो और इसे हृदय में धारण करो।

......जिस शक्ति के उन्मेष मात्र से दिग्दिगन्तव्यापी प्रतिध्वनि जाग्रत हुई है, उसकी पूर्णावस्था का कल्पना से अनुभव करो; और व्यर्थ सन्देह, दुर्बलता और दास जाति-सुलभ ईर्ष्या-द्वेष का परित्याग कर, इस महायुग-चक्र-परिवर्तन में सहायक बनो।

हम प्रभु के दास हैं, प्रभु के पुत्र हैं, प्रभु की लीला के सहायक हैं–यही विश्वास दृढ़ कर कार्यक्षेत्र में उतर पड़ो।"

–स्वामी विवेकानन्द

शान्ति

—स्वामी विवेकानन्द

[न्यूयार्क के रिजले मॅनर में अंग्रेजी में लिखित कविता, १८९९ ई०]

देखो, जो बालत् आती है,
वह शक्ति, शक्ति नहीं है !
वह प्रकाश, प्रकाश नहीं है,
जो अंधेरे के भीतर है,
और न वह छाया, छाया ही है,
जो चकाचौंध करनेवाले प्रकाश के साथ है ।

वह आनन्द है, जो कभी व्यक्त नहीं हुआ,
वह अनभोगा, गहन दुःख है,
अमर जीवन जो जिया नहीं गया
और अनन्त मृत्यु, जिस पर किसी को शोक नहीं हुआ।

न दुःख है, न सुख,
सत्य वह है,
जो इन्हें मिलाता है,
वह रात है, न प्रात,
सत्य वह है जो इन्हें जोड़ता है ।

वह संगीत में मधुर विराम,
पावन छंद के मध्य यति है,
मुखरता के मध्य मौन,
वासनाओं के विस्फोट के बीच,
वह हृदय की शान्ति है ।

सुन्दरता वह है, जो देखी न जा सके ।
प्रेम वह है, जो अकेले रहे ।
गीत वह है, जो बिना गाये जिये ।
ज्ञान वह है, जो कभी जाना न जाय ।

जो दो प्राणों के बीच मृत्यु
और दो तूफानों के बीच एक स्तब्धता है,
वह शून्य, जहाँ से सृष्टि आती है,
और जहाँ वह लौट जाती है ।
वहीं अश्रु बिन्दु का अवसान होता है,
प्रसन्न रूप को प्रस्फुटित करने को
वही जीवन का चरम लक्ष्य है,
और शान्ति ही एकमात्र शरण है ।

❑

श्रीरामकृष्ण देव की प्रासंगिकता

–स्वामी जितात्मानन्द
सचिव, रामकृष्ण आश्रम राजकोट, गुजरात

(दूरदर्शन पर स्वामी जितात्मानन्द द्वारा अंग्रेजी में प्रदत्त वार्ता के आधार पर)

श्रीरामकृष्ण ने ऐसे समय में अवतरित हो कर अपना सन्देश दिया जब शोपनहाबर और नीत्से के दर्शन के प्रभाव में तथा डारविन के वैज्ञानिक जड़वाद की उन्नति के समय भगवान और धर्म दोनों आधुनिक 'मानव' के मन से तिरस्कृत हो रहे थे। ऐसे समय श्रीरामकृष्ण ने भगवान की सत्यता को सिद्ध किया तथा भगवद् साक्षात्कार और स्वयं की दिव्यता को प्रकाशित करना मनुष्य जीवन का चरम उद्देश्य बताया।

श्रीरामकृष्ण ऐसे समय में अवतीर्ण हुए जब मैकाले के प्रभाव से साठ प्रतिशत से अधिक भारतीय शिक्षित युवकों ने हिन्दू धर्म को अंध-विश्वास तथा मूर्ति पूजा का धर्म मान कर त्याग दिया था। उसी मूर्ति पूजा के माध्यम से, जगन्माता काली की पूजा से, श्रीरामकृष्ण आध्यात्मिक शक्ति की उच्चतम ऊँचाई तक उठे और उस समय के अत्याधुनिक पाश्चात्य मस्तिष्कों को वैदिक धर्म के गम्भीर संदेशों की ओर आकर्षित किया, जिसका वे उपदेश करते थे। श्रीरामकृष्ण के वे कौन से सन्देश थे ?

(१) प्रत्येक जीवात्मा की दिव्यता और सभी धर्मों की मूलभूत एकता।

(२) अपनी अभूतपूर्व आध्यात्मिक साधना के द्वारा, श्रीरामकृष्ण ने ईश्वर प्राप्ति के सभी मार्गों की साधना की, जिसमें सूफी-इस्लाम और ईसाई धर्म की साधना भी सम्मिलित है। उन्होंने अनुभव किया कि ये सभी रास्ते बाहर और भीतर भगवद् दर्शन के लिए उपयुक्त हैं। अपनी युवा धर्म पत्नी श्री सारदा देवी के साथ अभूतपूर्व पवित्रता के साथ जीवन यापन किया तथा उनकी जगन्माता काली के रूप में पूजा की। इस प्रकार स्त्री जाति को आध्यात्मिक गुरु की ऊँचाई तक ले गये जिससे समाज शिक्षित और पवित्र हुआ।

अपनी अभूतपर्वू पवित्रता और महान आध्यात्मिक शक्ति के बावजूद श्रीरामकृष्ण ने जनसामान्य को, मित्रों, को पापियों को स्वीकारा और गले लगाया और उनको मानवीय कुशलता और दिव्यता की ऊँचाई तक ले गये। महान रूसी चित्रकार निकोलस डे रोरिच श्रीरामकृष्ण से प्रभावित हुए और कहा– श्रीरामकृष्ण अच्छे हैं क्योंकि उनहोंने कभी कुछ नष्ट नहीं किया, कभी किसी का त्याग या तिरस्कार नहीं किया। उन्होंने सबको, सब कुछ स्वीकार किया। उन्होंने उन सभी को जो उनके सम्पर्क में आये ऊँचा उठाया। यद्यपि वे सब समय भगवद् भाव में लीन रहते थे, फिर भी वे जीवन के सभी कार्यों, छोटे से छोटे कार्यों को मनुष्य में भगवान की सेवा समझ कर करते थे और इस प्रकार प्राचीन स्थिर धर्म को गतिशील किया जिससे सामान्य जनता की प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति हुई।

आज जबकि धर्मों के भीतर की प्रतिद्वन्द्विता संसार को तीसरे विश्वयुद्ध की ओर ले जा रही है, जब कि कार्ल सागन के अनुसार तीसरा विश्व युद्ध आधे दिन में समाप्त हो जाएगा और जिसकी तीव्रता प्रति सेकेण्ड द्वितीय विश्वयुद्ध के बराबर होगी। नोबेल प्राइज विजेता, प्रसिद्ध इतिहासकार श्री अरनाल्ड जे० टोयेनेवी इन धर्मोन्यूक्लीयर एज में सुरक्षित रहने का एकमात्र रास्ता श्रीरामकृष्णदेव के उपदेश में पाते हैं।

अपने गुरु श्रीरामकृष्ण के पदचिह्नों पर चलते हुए स्वामी विवेकानन्द ने धर्म को गतिशील, वेदान्त को प्रैक्टिकल, और सभी सांसारिक कार्यों को पवित्र पूजा बना दिया। उन्होंने जन सामान्य को प्रगति का रास्ता दिखाया और तथाकथित निम्न जाति के लोगों को और स्त्रियों को सामाजिक, शैक्षणिक और आर्थिक तथा आध्यात्मिक रूप से उन्नत किया। उनको उपनयन और संन्यास प्रदान कर उनके लिए उच्चतम आध्यात्मिक संस्कृति का मार्ग खोल दिया।

श्रीरामकृष्ण के बारे में स्वामी विवेकानन्द कहते हैं :

श्रीरामकृष्ण जन सामान्य के उद्धारकर्त्ता, संसार की सभी स्त्रियों के राक्षक, संसार को अन्तधार्मिक घर्षण से बचाने वाले, और मानवता को भोगवाद की संस्कृति से बचाने वाले हैं।

आज श्रीरामकृष्ण, पूर्व और पश्चिम में, सभी जगह ईसा और बुद्ध की परिष्कृति के रूप में पूजे जाते हैं। जिनके जीवन और संदेश में आधुनिक मानव को सभ्यता की कुंजी प्राप्त हुई। जैसा कि रोमेन रोलैण्ड ने कहा है और लाखों लोग अनुभव कर रहे हैं कि भौतिक समृद्धि की परिपूर्णता की तुलना में आन्तरिक दिव्यता का प्रकटन अधिक शक्ति, आनन्द और पूर्णता लाता है। ❑

ज्योतिषांमपि तज्ज्योतिः

लेखक : स्वामी यतीश्वरानन्द
अनुवाद : स्वामी ब्रह्मेशानन्द

[स्वामी यतीश्वरानन्द जी कृत 'How to Seek God' के अंश का अनुवाद ।]

ध्यान की पद्धति निम्न प्रकार है : (१) ईश्वर के ज्योतिर्मय रूप का ध्यान (२) उनके सद्गुणों का ध्यान (३) उनके अनन्त चैतन्य का ध्यान, उनके क्षुद्र व्यक्तित्व का नहीं बल्कि अनन्त सत्ता का ध्यान। श्रीरामकृष्ण माँ जगदम्बा के आनन्दमय रूप का ध्यान करते थे। उन्होंने श्रीरामकृष्ण को अनुभूति कराई कि साकार, निराकार की ही अभिव्यक्ति है। वे कहते थे : मेरी माँ की ज्योति त्रिभुवन को आलोकित कर रही है। माँ उनके लिए परम ज्योति थीं। वे सर्वत्र हैं लेकिन हमें उनका भान नहीं है। उनकी कृपा होने पर हम उनकी विद्यमानता का अनुभव कर पाते हैं। साधना द्वारा क्या परमात्मा को अपने निकट खींचा जा सकता है ? वे दूर नहीं हैं। अभी हमें उनकी सत्ता का अनुभव नहीं हो रहा है। निष्ठापूर्वक साधना करने पर चित्त शुद्ध होता है ओर हम उनकी सत्ता का अनुभव करने लगते हैं। क्या दीपक को प्रकाशित होने के लिये बाध्य करना पड़ता है ? प्रकाश सर्वदा विद्यमान है। दर्पण जितना साफ होगा, प्रतिबिम्ब उतना ही सतेज होगा। ईश्वर हमारा स्वागत करने के लिये सदा आतुर हैं, लेकिन हम उनकी और नहीं मुड़ते।

भगवद्गीता में श्रीकृष्ण चार प्रकार के भक्त बताते हैं। ज्ञानी, जो स्वभावतः भगवान को भजते हैं। आर्त–जो कष्ट निवारण के सभी मानवी उपायों को आजमाने के बाद भगवान की ओर मुड़ते हैं। अर्थार्थी– जो समस्त इच्छाओं के असफल होने पर भगवान को आजमाना चाहता है, और जिज्ञासु जो यह जानना चाहता है कि क्या भगवान हैं और यदि हैं तो कैसे हैं। भगवान कहते हैं, ये सब महान और अच्छे हैं। क्यों ? क्योंकि भगवान् हमारी आत्मा की आत्मा हैं; वे हम सभी को प्रेम करते हैं, तथा हमें उन तक उठाना चाहते हैं। पारस पत्थर किसी धातु का स्पर्श करने पर प्रसन्न होता है। ईश्वर कृपामय हैं। उनका प्रकाश सदा चमक रहा है। जिस मात्रा में हमारा दर्पण साफ होगा उसी मात्रा में हम उनके प्रकाश को ग्रहण कर पायेंगे। साधना का यही महत्व है।

भगवान अपने को प्रकट करने को व्यग्र हैं। अपनी ओर से जो करना है, उसे पूरी तरह करो। बाकी कार्य परमात्मा की शक्ति कर लेगी। श्री रामकृष्ण की ओर आकृष्ट हुए लोग प्रकाश चाहते हैं। यह प्रकाश कहाँ है ? प्रकाश का एक मात्र स्रोत 'ज्योतिषामपि ज्योतिः', अर्थात् ज्योतियों की भी ज्योति है। यह कोई भौतिक प्रकाश नहीं हैं, बल्कि चैतन्य का प्रकाश है। उपनिषद में एक शिष्य की कथा है, जो गुरु से पूछता है : 'मानव किसके प्रकाश से देखता है ?' गुरु उसे धीरे-धीरे क्रमबद्ध रूप से उपदेश देना चाहते हैं। वे कहते हैं, सूर्य के प्रकाश से।' शिष्य सन्तुष्ट नहीं होता। 'सूर्य एवं चन्द्रमा के न होने पर क्या होता है ?' गुरु उत्तर देते हैं : 'दीपक के प्रकाश से।' जब दीपक बुझा दिया जाय तब ?' 'वाणी' गुरु कहते हैं, 'अंधेरे में वाणी दिशा बताती है।' शिष्य पूछता है : 'वाणी के शान्त होने पर मानव की ज्योति क्या है ?' 'आत्म-ज्योति', गुरु ने उत्तर दिया। जब तक वह है तब तक हम देख सकते हैं। इस ज्योति को कैसे देखें ? हमारी देह, इन्द्रिय, मन एवं अहंकार रास्ते में आते हैं। आन्तरिक अथवा बाह्य विषयों को हम जिन कारणों द्वारा देखते हैं वे ही आत्मा की चैतन्य ज्योति को देखने का प्रयत्न करते समय बाधा बन जाते हैं।

हमारे शास्त्र कहते हैं कि आत्मा आनन्दमय, विज्ञानमय, मनोमय, प्राणमय तथा अन्नमय, इन पाँच कोषों से आवृत है। दूसरे शब्दों में ये ही कारण, सूक्ष्म तथा स्थूल इन त्रिशरीरों के रूप में वर्णित हैं। आत्मा पंचकोषों अथवा तीन शरीरों के परे, बिना किसी अन्य सहायता के ज्योतिर्मय, तथा इन आवरणों को भेदते हुए प्रकाशित हो रही है। वह हमारी वास्तविक सत्ता है। हम एक के भीतर दूसरे आवरण से आच्छादित ज्योति पूंजों के समान हैं। अतः अपनी वास्तविक आत्मा को, अपने स्वरूप को जानने के लिए हमें बाधा-स्वरूप इन पाँच कोषों अथवा तीन शरीरों को भेदते हुए अपने भीतर गहरे पैठना होगा। हम इन देहों को बहुत महत्व देते हैं। स्थूल देहों के रूप में तो हम नर या मादा पशु मात्र हैं। थोड़ी प्रगति करने पर भी, हम अपने मन द्वारा बंध जाते हैं और अपने विचारों, भावनाओं एवं संवेदनाओं के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं। लेकिन एक रास्ता है। हृदय मंदिर में प्रवेश करो; तथा स्पन्दित होती अपनी चेतना का वहाँ अनुभव करो। वही आत्मचेतना का केन्द्र है। यही समग्र शरीर और मन में अनुस्यूत है।

वह व्यष्टि आत्मा है जो परमात्मा की एक किरण है। वही आत्मा सर्वव्यापी चैतन्य अथवा परमात्मा के साथ जोड़ने वाली कड़ी है। उसी चैतन्य में, ईश्वर में, अपने शरीर, मन, अहंकार आदि सभी को विलीन करो। सोने के ठीक पूर्व के मनोभाव को बनाये रखो। उस समय शरीर व मन की क्रियायें धीरे-धीरे रुक जाती हैं, लेकिन तुम स्वयं फिर भी जाग्रत रहते हो। स्वयं को निद्राभिभूत होने मत दो। मन या तो चंचल रहता है या हम सो जाते हैं। हृदय से प्रारम्भ कर उच्च से उच्च स्तर तक, चेतना के अन्तिम केन्द्र तक पहुँचने का प्रयत्न करो, जहाँ कोई विचार नहीं रहता और केवल आत्म चैतन्य प्रकाशित रहता है।

इष्ट अथवा किसी सन्त महापुरुष का ध्यान करते समय इस दिव्य चैतन्य की प्राप्ति ही लक्ष्य होता है। इस प्रक्रिया में ज्योतिर्मय रूप का ध्यान स्थूल शरीर के समरूप है। इसके बाद दैवी सद्‌गुणों का ध्यान किया जाता है जो मन तथा सूक्ष्म शरीर के बराबर है। भक्त को इनका अतिक्रमण कर परमात्मा तक, शुद्ध चैतन्य तक पहुँचना चाहिये; जो स्वयं की आत्मा एवं सर्वव्यापी परमात्मा ही है। इस चरम अवस्था की उपलब्धि का सर्वश्रेष्ठ उपाय जप है। माँ सारदा के सुन्दर उपदेश का स्मरण करो– 'जिस प्रकार पूजा के चन्दन चर्चित पुष्पों को छूने से चन्दन की गन्ध तुम्हारे हाथों में आ जाती है, उसी प्रकार भगवान का चिन्तन करने से मन भी ऊर्ध्वमुखी हो जाता है।'

भौतिक से मानसिक स्तरों पर जाकर अपने विचारों के साक्षी बनो। हम सदा सोचते रहते हैं कि सत्य, ज्योति, हम से बाहर है। अब हमें अनुभव होने लगता है कि वह भीतर भी है। यह अनुभव होता है कि तुम अपने विचारों के साक्षी तथा अपने मन से स्पष्ट रूप से पृथक हो। तुम अपनी अहंचेतना को जानने लगते हो। आगे बढ़ो और इस अहंचेतना के अन्तिम स्रोत, उस आदि कारण तक पहुँचने का प्रयत्न करो जहाँ से चेतना का प्रकाश आता है। तब तुम्हें पता चलेगा कि तुम वही प्रकाश हो और सदा वही थे। तुम्हारा देह मन के साथ तादात्म्य झूठा था। तुम सोचते हो कि तुम आकाश की ओर बढ़ रहे हो मानो एक सूई चुम्बक की ओर बढ़ रही है। लेकिन वस्तुतः यह क्रिया दूसरी दिशा से होती है। सर्वदा परमात्मा ही सारे समय तुम्हारी ओर आ रहा था और तुम्हें अपनी ओर खींच रहा था। यदि मार्ग साफ हो, यदि देह, इन्द्रिय एवं मन पवित्र हों, यदि अहंकार का पर्दा अधिक मोटा न हो, तब ज्योति बहुत स्पष्ट रूप से एवं अधिक तेजी से चमकती है। असीम व ससीम सदा एक दूसरे से संबद्ध रहते हैं, लेकिन महान बाधाएँ– अज्ञान की, देहात्म बोध की, मन एवं इन्द्रियों की, निरन्तर हो रही सांसारिक चिन्ता की, बाधाएँ बीच में आ जाती हैं। बाधाओं के दूर होने पर ज्योति अपने आप चमकने लगती है। वह कहीं गई नहीं थी और न वह कहीं बाहर से आती है। अतः यह हमारे अन्दर नित्य प्रकाशित हो रहे सत्य का पुनराविष्कार है। यह केवल अपने वास्तविक स्वरूप का पुनः स्मरण है। श्रीरामकृष्ण एक शेर-शावक की कहानी सुनाया करते थे, जो भेड़ों के झुण्ड में पला था। बाद में एक बड़े शेर ने उसे पकड़ा और उसके स्वरूप के बारे में कहा। शेर उसके मुँह में मांस का एक टुकड़ा ठूंस कर उससे कहता है : 'यह खा, घास नहीं। तू भेड़ नहीं है, बल्कि मेरी ही तरह एक शेर है।' गुरु शिष्य को ज्ञान प्रदान करते हैं तथा उसके वास्तविक स्वरूप के बारे में बताते हैं। शेर शावक की तरह शुरू-शुरू में 'मांस खाना' कठिन होता है।

प्रकाश हमारे भीतर है, अतः उसे बाहर खोजना मूर्खता है। वह तुम्हारी धारण शक्ति से कहीं अधिक मात्रा में तुममें विद्यमान है। उसका आविष्कार करो, अनुभव करो और धन्य हो जाओ। उधार मांगे प्रकाश से तुम कुछ उपलब्धि नहीं कर सकते। प्रत्येक को अपने भीतर प्रकाश खोजना होगा और जो प्रकाश प्रत्येक में भासता है, वही सर्वत्र भास रहा है। परमात्मा सभी में हैं, वही सब कुछ हैं; उनके ऐश्वर्य का कुछ अंश अभिव्यक्त हो जीव कहलाता है। पूर्ण चैतन्य ब्रह्माण्ड की आत्मा है। वह व्यष्टि जीव एवं समष्टि ब्रह्माण्ड दोनों के परे हैं। सागर पर तैरते हुए असंख्य बुद्‌बुदों की कल्पना करो, जो सभी प्रकाशमय हैं। समग्र सागर प्रकाश से परिपूर्ण है। एक ही अनन्त ज्योति व्यष्टि एवं समष्टि के रूप में भी अभिव्यक्त हो रही है। बुद्‌बुदों एवं लहरों में प्रतिबिंबित हो रहा प्रकाश एवं सागर में प्रतिबिंबित हो रहा अनन्त प्रकाश, इन सभी का एक ही स्रोत है। प्रत्येक को अन्तर्ज्योति, आत्मज्योति, चैतन्य-ज्योति को खोजना चाहिए। इस ज्योति का आविष्कार करने पर इस अन्तर्चक्षु के खुलने पर हम उसी ज्योति को सर्वत्र अभिव्यक्त होते अनुभव करते हैं। अपनी ज्योति को अनन्त ज्योति में विलीन करने में कैसा महान आनन्द है ?

अवश्य, यह समग्र देहात्म बोध, मन इन्द्रियों एवं सीमित व्यक्तित्व के ऊपर उठने पर ही संभव है। उपनिषद की पूर्वोक्त कथा का स्मरण करो। मानव की ज्योति क्या है ? वह उसकी चेतना है। उस ज्योति के प्रकाश से ही देह, इन्द्रियाँ मन तथा अहंकार कार्य करते हैं। उस

अनन्त ज्योति को देह, इन्द्रियों एवं मन की सीमाओं से मुक्त करना होगा। ऐसा करने पर क्या होगा ? श्रीरामकृष्ण कहते थे 'प्याज के छिलकों को एक-एक करके उतारने पर केवल आकाश बचता है। वह ज्योतिराकाश सबका आधार है।' संसार में तुम रेत की नींव पर एक विशाल भवन बनाने का प्रयत्न करते हो। तब एक महान आघात आता है, और तुम सोचने लगते हो सब, मुझे धोखा दे रहे हैं। सब कुछ टूट रहा है।' आखिर मैं किस पर निर्भर हूँ। यह आध्यात्मिक संकट का समय होता है। तुम सोचते हो, जिसे मैं सत्य मानता था, असत्य प्रतीत हो रहा है।' तुम सुरक्षा के लिये दूसरों पर निर्भर थे, जो स्वयं असुरक्षित हैं। वे दूसरों की सुरक्षा कैसे बन सकते हैं ? जब तक तुमने अपनी आत्मा को नहीं जाना तब तक तुमने कुछ भी नहीं जाना। इस सत्ता को जाने बिना तुम्हारे जीवन का कोई आधार ही नहीं है। भीतर ज्योति जल रही है, लेकिन तुम देख नहीं रहे हो। तुम बाहर की ओर देख रहे हो। वह ज्ञान की, प्रज्ञा की ज्योति है, जो मन एवं अहंकार के भीतर से प्रकाशित हो रही है। जब सात्विक मनोवृत्ति होती है, तब व्यक्ति संतुलित रहता है और ज्योति अच्छी तरह प्रकाशित होती है। राजसिक प्रकृति के माध्यम से वह कम प्रकाशित होती है, और तामसिक प्रकृति से और भी कम। मैंने प्रजापति के पास आत्मा को जानने के लिये गये इन्द्र और विरोचन की कथा सुनाई थी। गुरु ने क्या कहा था ? नेत्रों से प्रकाशित हो रही ज्योति को देखो इत्यादि। दैवी प्रकृति वाला व्यक्ति अन्ततः इस उपदेश पर ध्यान कर सत्य को समझ पाया। लेकिन आसुरी प्रकृति वाला व्यक्ति इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि देह ही आत्मा है।

मानव में विद्यमान उस ज्योति का ध्यान करो। आत्मा के देह को त्यागने पर सभी इन्द्रियाँ बनी रहती हैं, लेकिन उनमें क्रिया नहीं हो पाती। वह ज्योति मन, इन्द्रियों एवं देह के माध्यम से प्रकाशित होती है। यह जीवन्त चेतन है एवं क्षुद्र अहंकार के साथ मिल जाती है। परमात्मा का प्रकाश बादल के एक छोटे से टुकड़े में प्रकाशित होता है, और हम उसे छोटे से मानव व्यक्तित्व के रूप में देखते हैं। अज्ञान के कारण हम इस क्षुद्र अहंकार से तादात्म्य स्थापित कर छोटे एवं सीमित प्राणी बन जाते हैं। चैतन्य एवं जड़ मिल जाते हैं, और यही समग्र दुःख एवं कष्ट का कारण है। मन और अहंकार भी सूक्ष्म भूल है। हमें विवेक एवं ध्यान द्वारा चैतन्य को अन्य सभी वस्तुओं से पृथक् करना है। उसे सभी बन्धनों से मुक्त करना है : ❑

आज हमें रजोगुण की अतीव आवश्यकता है। आज जिन्हें तुम सात्त्विक समझते हो, उनमें नब्बे प्रतिशत से भी अधिक लोग असल में घोर तमोगुण में डूबे हुए हैं। हमें आज जिसकी आवश्यकता है, वह है राजसिक शक्ति की प्रचुरता, क्योंकि सारा देश तमोगुण के आवरण में ढका हुआ है। यहाँ के लोगों को रोटी और कपड़ा दो– उन्हें जगाओ–उन्हें और भी अधिक क्रियाशील बनाओ। अन्यथा वे तो पत्थरों और वृक्षों के सदृश जड़ हो जाएँगे।

–स्वामी विवेकानन्द

❑

प्रत्येक आत्मा अव्यक्त ब्रह्म है।

बाह्य एवं अन्तःप्रकृति को वशीभूत करके आत्मा के इस ब्रह्मभाव को व्यक्त करना ही जीवन का परम लक्ष्य है।

कर्म, उपासना, मनः संयम अथवा ज्ञान, इनमें से एक, एक से अधिक या सभी उपायों का सहारा लेकर अपना ब्रह्मभाव व्यक्त करो और मुक्त हो जाओ।

बस, यही धर्म का सर्वस्व है। मत, अनुष्ठान-पद्धति, शास्त्र, मन्दिर अथवा अन्य बाह्य क्रिया-कलाप तो उसके गौण ब्योरे मात्र हैं।

–स्वामी विवेकानन्द

हिन्दुधर्म एवं संस्कृति के प्रचार-प्रसार में गोस्वामी तुलसीदासजी का अवदान

–स्वामी नित्यज्ञानानन्द, बेलुड़मठ

धर्मभूमि भारतवर्ष एवं भोगभूमि पाश्चात्य देशों में अन्तर बताते हुए स्वामी विवेकानन्दजी ने कहा था–यदि पाश्चात्य देशवासियों से धर्म के संबंध में कुछ पूछो तो वह कहेगा कि रविवार को मैं गिरजाघर जाता हूँ, बस इतना ही। इसके आगे धर्म के बारे में वह कुछ नहीं जानता। परन्तु राजनीति आदि सांसारिक विषयों के संबंध में पूछो तो वह एक बड़ा लेक्चर दे देगा। इसके विपरीत भारतवर्ष के किसी साधारण कृषक को भी धर्म के बारे में पूछो तो वह धर्म के गूढ़ से गूढ़ रहस्यों को भी सरल-सहज भाषा में अनायास ही समझा देगा। परन्तु राजनीति आदि के संबंध में यदि कुछ पूछो तो वह कहेगा-वह तो राजनेताओं का काम है, उससे मेरा क्या लेना देना! भारतवर्ष के सर्वसाधारण में भी इस प्रकार धर्म के प्रचार-प्रसार का मुख्य कारण इस धर्मभूमि भारतवर्ष में नानक, कबीर, सूरदास, तुलसीदास, स्वामी विवेकानन्द आदि सन्त महात्माओं तथा राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, रामकृष्ण आदि अवतारी पुरुषों का बारम्वार जन्मग्रहण करना है।

उत्तर भारत में जनसाधारण के बीच सनातन हिन्दुधर्म के प्रचार-प्रसार का मुख्य श्रेय गोस्वामी तुलसीदास जी को जाता है। भगवान श्री राम के लोककल्याणकारी जीवन एवं चरित्र का अवलम्बन कर उन्होंने रामचरित मानस की रचना की तथा इसके माध्यम से सनातन वैदिक धर्म के मूलभूत सिद्धांतों को घर-घर पहुँचा दिया। सनातन हिन्दुधर्म एवं संस्कृति में गोस्वामी जी का क्या अवदान है–इसी संबंध में मैं थोड़ी-बहुत चर्चा करूँगा।

हिन्दुधर्म में 'चार' शब्द का बड़ा ही महत्त्व है। चार वेद, चार आश्रम, चार वर्ण, चार अवस्थाएँ, चार युग, चार योग, चार पुरुषार्थ इत्यादि। सबसे पहले हम चार पुरुषार्थ को ही लें क्योंकि यही सभी हिन्दू शास्त्रों का मूल विषय वस्तु है। पुरुषार्थ का अर्थ है–पुरुषस्य प्रयोजनम् अर्थात् मानव की आवश्यकता। मानव की चार प्रधान आवश्यकताएँ हैं–धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष। इन चार आवश्यकताओं की पूर्ति करना ही मानवजीवन का उद्देश्य है। इसीलिए इन्हें पुरुषार्थ कहा गया है।

सबसे पहला पुरुषार्थ है धर्म। धर्म का अर्थ यहाँ किसी उपासना पद्धति या पूजा से नहीं है। यहाँ धर्म का अर्थ है कर्तव्य-कर्म। याद रखें धर्म का अर्थ कर्तव्य-कर्म है। प्रत्येक व्यक्ति, चाहे वह पुरुष हो या नारी, का कर्तव्य-कर्म ही उसका धर्म है। धारणात् धर्म धर्मो धारयते प्रजाः। व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन में सुख-समृद्धि एवं शांति लाने के लिए प्रत्येक व्यक्ति के कुछ न कुछ व्यक्तिगत एवं सामाजिक कर्तव्य होते हैं। वही उसका धर्म है। जैसे शिक्षक का धर्म है छात्रों को शिक्षा देना, छात्र का धर्म अध्ययन करना है, पुलिस का धर्म समाज की सुरक्षा करना है, व्यापारी एवं कृषक का धर्म समाज का भरण-पोषण करना है इत्यादि। अतएव वही व्यक्ति सच्चा धार्मिक है जो मन्दिरों, मस्जिदों में न जाकर भी अपने कर्तव्य-कर्मों का पालन करता है। समस्त हिन्दु शास्त्रों के अनुसार दूसरों की भलाई करना ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है। कहा गया है–

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनम् द्वयम् ।
परोपकाराय पुण्याय पापाय परपीडनम्! ॥

अर्थात् अठारह पुराणों में महर्षि व्यास के केवल दो ही मुख्य वचन हैं–परोपकार करना ही पुण्य है, धर्म है और दूसरों को कष्ट देना ही पाप है, अधर्म है। गोस्वामी तुलसीदासजी यही कहते हैं–

परहित सरिस धरम नहिं भाई ।
परपीड़ा सम नहिं अधमाई ॥

भगवान श्री रामकृष्णदेव ने भी शिवज्ञान से जीवसेवा करने का उपदेश दिया है। प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर ईश्वर का वास समझकर उसकी यथाशक्ति सेवा करना ही सबसे बड़ा धर्म है।

दूसरा पुरुषार्थ है अर्थ। अर्थ का मतलब धनोपार्जन से है। मनुष्य जीवन में, खासकर गृहस्थ जीवन में, धनोपार्जन का विशेष स्थान है। इससे व्यक्ति एवं सामाजिक जीवन का भरण-पोषण होता है; मानव की विविध कामनाओं की शांति होती है। परन्तु धनोपार्जन ईमानदारी-पूर्वक एवं सदुपाय से होना चाहिए। दूसरों का अनिष्ट करके अथवा हानि पहुँचाकर अर्थ का उपार्जन करना सामाजिक अपराध है।

तीसरा पुरुषार्थ है काम। काम के द्वारा मानव अपनी शारीरिक एवं मानसिक भोगैषणाओं की पूर्ति करता है। मनुष्य जीवन का यह एक अनिवार्य अंग है। सांसारिक सारी उन्नति के मूल में यह काम ही है। रसना,

रति, शृंगार, संगीत, नृत्य, साहित्य, खेल-क्रीड़ा, भवन-उद्यानादि जितने भी भोग-सुख के साधन हैं वे सब इस काम के अन्तर्गत आते हैं। परन्तु यदि धर्म के द्वारा मनुष्य की भोगैषणा को नियंत्रित न किया जाय तो यह उसे अतिशय भोग-विलासिता की ओर ले जाकर पतित, पथभ्रष्ट कर देता है, समाज एवं व्यक्ति जीवन का सर्वनाश कर देता है। इसीलिए व्यास जी कहते हैं–धर्माद् अर्थश्च कामश्च अर्थात् अर्थ की प्राप्ति एवं काम की पूर्ति धर्म का अवलम्बन करके ही करनी चाहिए।

चौथा पुरुषार्थ है मोक्ष। मोक्ष का अर्थ है मुक्ति। मुक्ति यानि सभी प्रकार के दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति एवं शाश्वत आनन्द की प्राप्ति। यह तभी संभव है जब हम अपने वास्तविक स्वरूप को समझें, हम यह जाने कि हम पूर्णकाम हैं, नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त आत्मा हैं, हमें दुनियाँ की किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं, मेरा न कोई दुःख है और न सुख, न आग मुझे जला सकती है और न पानी मुझे भिंगा सकता है, न वायु मुझे सुखा सकती है और न कोई शस्त्र मुझे काट सकता है क्योंकि मैं तो अजर-अमर निर्लिप्त शाश्वत आत्मा हूँ। जबतक हमें इस आत्मस्वरूप का ज्ञान नहीं होता तब तक शाश्वत आनन्द की प्राप्ति असंभव है। धर्म, अर्थ तथा काम से जो सुख मिलता है वह क्षणिक है। यदि हमें शाश्वत आनन्द की प्राप्ति करना है तो हमें आत्मसाक्षात्कार करना ही होगा; परम शांति एवं परम आनन्द के धाम सच्चिदानन्द स्वरूप ईश्वर की खोज करनी ही होगी; तभी मोक्ष नामक अंतिम पुरुषार्थ की प्राप्ति होगी।

इस प्रकार इहलौकिक एवं पारलौकिक दोनों प्रकार के मानवीय प्रयोजनों का समावेश चार पुरुषार्थों के अन्तर्गत किया गया है। हमारे जितने भी शास्त्र हैं चाहे वे वेद हों या पुराण हों, रामायण हों या महाभारत हों उनकी मुख्य विषयवस्तु ये चार पुरुषार्थ ही हैं क्योंकि मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति करना ही तो शास्त्रों का कार्य है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने अमर ग्रन्थ रामचरित मानस में रामकथा के माध्यम से इन चार पुरुषार्थों एवं इनकी पूर्ति के उपायों का ही वर्णन किया है। बालकाण्ड में मानस-वर्णित विषयों का उल्लेख करते हुए गोस्वामीजी लिखते हैं–

अरथ धरम कामादिक चारी ।
कहब ग्यान बिग्यान बिचारी ॥

अर्थात् धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों का ज्ञान एवं विज्ञान के साथ वर्णन करूँगा।

परन्तु भगवान के जो अनन्य भक्त हैं वे तो इन चारों पुरुषार्थों में किसी को भी नहीं चाहते, वे तो केवल भगवान की भक्ति चाहते हैं। इसलिए भक्ति शास्त्रों में इसे पंचम पुरुषार्थ माना गया है। रामचरित मानस में गोस्वामी जी ने भक्ति नामक इस पंचम पुरुषार्थ की भी बात कही है। प्रयागराज जी से भक्त शिरोमणि भरत जी हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हैं–

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान ।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन ॥

अर्थात् मुझे न अर्थ की इच्छा है, न धर्म की, न काम की और न मैं मोक्ष ही चाहता हूँ। जन्म-जन्म में मेरा श्री रामजी के श्रीचरणों में प्रेम हो, बस, यही वरदान माँगता हूँ, दूसरा कुछ नहीं। भरतजी के माध्यम से गोस्वामीजी ने भगवान के भक्तों की हृदय की बात कही हैं। भक्ति ही भक्तों के जीवन का अंतिम पुरुषार्थ है, जीवनोद्देश्य है।

रामचरित मानस में गोस्वामीजी ने वेदों, पुराणों तथा अन्य हिन्दुशास्त्रों का सार प्रस्तुत किया है। रामचरित-मानस के प्रारंभ में वे लिखते हैं–'नानापुराण निगमागम सम्मतं यद् रामायणे निगदितं क्वचिद् अन्यतोऽपि'–अर्थात् नाना पुराण, वेद, तंत्र आदि हिन्दुशास्त्रों से जो सम्मत हैं उसी का वर्णन रामचरित मानस में किया गया है।

समातन हिन्दुधर्म की अपनी कुछ विशेषताएँ हैं, वैशिष्ट्य हैं। गोस्वामी जी ने इन सारी विशेषताओं की रक्षा रामचरित मानस में की है। इसलिए रामचरित मानस हिन्दुधर्म की रत्नपेटिका है।

हिन्दुधर्म की प्रधान विशेषता है इसका उदार सार्वजनीन भाव जो देश-काल-पात्र की सारी सीमाओं को लाँघकर सारे विश्व को अपने में समेट लेता है। हिन्दुधर्म का संदेश सारी मानवता के लिए है, सभी जाति, धर्म तथा सम्प्रदाय के लोगों के लिए है, वैदिक ऋषियों ने समस्त विश्व के लोगों को आत्मा की दिव्यता का संदेश सुनाते हुए कहा था–

शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ।
वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम् आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥
तमेवं विदित्वाऽति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्येतेऽयनाय ॥

अर्थात् हे अमृत के पुत्रो, हे दिव्यधाम के निवासियो, तुमलोग सुनो। मैंने उस महान पुरुष को जान लिया है। जो आदित्य के समान ज्योतिर्मय और अज्ञानान्धकार से अतीत है। उसको जानने से ही मृत्यु के पार जाया जा सकता है–मुक्ति का और कोई दूसरा मार्ग नहीं है। आत्मा की अमरता तथा ईश्वर की सर्वव्यापकता का जो महान संदेश हमारे ऋषियों ने विश्ववासी को दिया वह हिन्दुधर्म का अमूल्य रत्न है, अमूल्य निधि है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने एक बार फिर रामचरित मानस के माध्यम से इस

बहुमूल्य रत्न को जनसाधारण के बीच बिखेर दिया। उन्होंने पुनः घोषणा की–

ईश्वर अंश जीव अविनाशी ।
चेतन, अमल, सहज सुखराशी ॥

तुलसी के राम केवल वैकुण्ठ वासी नहीं, वे तो इस चराचर जगत के कण-कण में व्याप्त हैं; हिन्दु, मुसलमान, सिख, ईसाई सबके हृदय में निवास करते हैं। इसीलिए तो गोस्वामीजी कहते हैं–

सियाराम मय सब जग जानी ।
करहुँ प्रणाम जोरि जुग पानी ॥

हिन्दुधर्म की दूसरी बड़ी विशेषता है समन्वय का भाव। हिन्दुधर्म में नाना मतों एवं पथों का स्थान है तथा इन विभिन्न मतों एवं पथों में समन्वय बनाए रखना हिन्दुधर्म की अपनी विशेषता है। वेदों ने घोषणा की है– एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति अर्थात् सत्य तो एक ही है और विद्वान लोग उसका वर्णन विविध प्रकार से करते हैं तथा इस सत्य का साक्षात्कार भी विभिन्न पद्धतियों से किया जा सकता है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने हिन्दुधर्म के सभी मतों एवं पथों का सुन्दर समन्वय किया है। वे अर्जुन से कहते हैं–

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तान्स्तेथेव भजाम्यहम् ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्या: पार्थ सर्वश: ॥

अर्थात् हे पार्थ, जो कोई भी जिस किसी भी मार्ग से मेरे पास आता है, मैं उसे उसी मार्ग से ग्रहण करता हूँ क्योंकि सभी मनुष्य मेरे ही मार्ग का अनुसरण कर रहे हैं अर्थात् मेरी ही ओर आ रहे हैं। इसीलिए शिवमहिम्नस्तोत्र में पुष्पदंतजी कहते हैं–

रुचीनां वैचित्र्याद् ऋजुकुटिलनानापथजुषाम् ।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥

अर्थात् जिस प्रकार विभिन्न नदियाँ भिन्न-भिन्न स्रोतों से निकलकर सागर में मिलती हैं, उसी प्रकार हे प्रभु, भिन्न-भिन्न रुचि के अनुसार विभिन्न टेढ़े-मेढ़े अथवा सीधे रास्ते से जानेवाले लोग अंत में तुझमें ही आकर मिलते हैं। वर्तमान युग में भगवान श्रीरामकृष्णदेव ने अपने अनुभव के आधार पर इसे प्रमाणित कर दिखाया है। वे कहते हैं–ईश्वर तो केवल एक है, परन्तु उनके नाम एवं भाषा अनन्त हैं। जो जिस नाम एवं भाव से उनकी आराधना करता है वे उसी नाम एवं उसी भाव से उसे दर्शन देते हैं। अतएव जो लोग संकीर्ण विचार के तथा अज्ञानी हैं वे ही दूसरों के धर्म की निंदा करते हैं। परन्तु जो सच्चा ईश्वर भक्त है उसके भीतर किसी तरह की कट्टरता नहीं होती। हिन्दुधर्म में धार्मिक कट्टरता एवं अन्धता का कोई स्थान नहीं है।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरित मानस में इस समन्वय भाव की पूर्णतया रक्षा की है। गोस्वामीजी का आविर्भाव जिस समय हुआ था उस समय हिन्दु समाज वैष्णव, शैव, शाक्त, स्मार्त, नाथ सिद्ध आदि अनेक सम्प्रदायों में बँटा हुआ था तथा वे एक-दूसरे के कट्टर विरोधी थे। परन्तु गोस्वामीजी ने अपनी समन्वयकारी वाणी के द्वारा इन सारी कट्टरताओं को दूर कर दिया। उनके प्रभाव से समन्वय की भावना पुनः भारतीय समाज में प्रकाशित हुई। वैष्णवों एवं शैवों के विरोध के परिहार का प्रयत्न रामचरित मानस में स्थान-स्थान पर परिलक्षित होता है। गोस्वामी जी ने शिव को राम का सबसे बड़ा अधिकारी भक्त बनाया तथा इसके साथ ही राम को शिव का अनन्य उपासक बनाकर दोनों के महत्त्व का प्रतिपादन किया। श्रीराम के मुखारविन्द से तो उन्होंने स्पष्ट ही कहला दिया–

शिवद्रोही मम दास कहावा ।
सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा ।

अर्थात् जो शिवजी से तो द्रोह करता है और मेरा भक्त कहलाना चाहता है उसे सपने में भी मेरी प्राप्ति नहीं होगी क्योंकि–

शंकर भजन बिना नर भगति न पावई मोरि। अर्थात् शंकरजी का भजन किये बिना मेरी भक्ति कोई नहीं पा सकता ।

गोस्वामीजी के समय ब्रह्म में दो रूप सगुण एवं निर्गुण को लेकर भी बड़ा विवाद था। निर्गुण ब्रह्म को माननेवाले सगुणब्रह्म का खंडन करते थे तथा सगुण ब्रह्म को माननेवाले निर्गुण ब्रह्म का खंडन करते थे। तुलसीदास जी ने इन दोनों में समन्वय स्थापित करते हुए कहा–

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा ।
अकथ अगाध अनादि अनूपा ॥

अर्थात् निर्गुण एवं सगुण एक ही ब्रह्म के दो रूप हैं, ये दोनों रूप अकथनीय, अथाह, अनादि एवं अनुपम हैं। इसी तरह गोस्वामी जी ने ब्रह्म के साकार एवं निराकार रूप का भी समन्वय किया है। निराकार ब्रह्म किस प्रकार साकार रूप धारण करते हैं इस प्रसंग में वे लिखते हैं–

अगुण अरूप अलख अज जोई ।
भगतिप्रेम बस सगुन सो होई ॥
जो गुनरहित सगुन सोई कैसे ।
जलु हिम उपलविलग नहिं जैसे ॥

अर्थात् जो ब्रह्म निर्गुण, निराकार, इन्द्रियातीत अजन्मा हैं वे ही भक्ति और प्रेम के वशीभूत होकर सगुण साकार रूप धारण करते हैं जैसे निराकार जल ही साकार रूप धारण करता है। सगुण, निर्गुण, सरूप-अरूप ब्रह्म

के इन विभिन्न रूपों का समन्वय रामचरित मानस में सर्वत्र दिखाई देता है। भगवान राम के जन्म के समय माता कौशल्या सर्वप्रथम भगवान का चतुर्भुज रूप दर्शन करती हैं—लोचन अभिरामा तनुघनश्यामा निज आयुध भुज चारी इत्यादि। फिर भगवान की स्तुति करते हुए वह कहती हैं—मायागुन ग्यानातीत अमाना। और अंत में वही ब्रह्मस्वरूप भगवान माँ के कहने पर बालक बन रुदन करने लगते हैं। कितने सुन्दर ढंग से ब्रह्म के निर्गुण निराकार एवं सगुण-साकार रूप का तुलसीदास जी ने समन्वय किया है।

दार्शनिक क्षेत्र में तुलसीदास जी का और एक महत्त्वपूर्ण अवदान है और वह है ज्ञान एवं भक्ति के बीच समन्वय स्थापन करना। तुलसीदास जी यह मानते हैं कि ज्ञान एवं भक्ति दोनों ही मुक्ति के साधन हैं। उत्तरकाण्ड में काकभुशुण्डि गरुड़ संवाद में उन्होंने ज्ञान एवं भक्ति का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है। ज्ञानदीप तथा भक्ति चिंतामणि प्रसंग बड़ा ही मनोरम है। गोस्वामीजी काकभुशुण्डि जी के श्रीमुख से कहलाते हैं—

भगतिहि ग्यानहि नहिं कछु भेदा ।
उभय हरहि भव संभव खेदा ॥

अर्थात् भक्ति एवं ज्ञान में कोई अन्तर नहीं है क्योंकि दोनों ही संसार से उत्पन्न होने वाले क्लेशों को दूर करने वाले हैं।

परन्तु तुलसीदास जी यह मानते है कि ज्ञानमार्ग की अपेक्षा भक्ति पथ सहज, सरल एवं सबके लिए उपयोगी है । उनके अनुसार कलियुग केवल नाम आधारा ॥ सुमिरि सुमिरि भव जायहुँ पारा॥ भगवान श्रीरामकृष्णदेव का भी यही मत है। वे कहते है—इस कलियुग में नारदीय भक्ति मार्ग ही प्रशस्त है।

गोस्वामीजी ने न केवल दार्शनिक क्षेत्र में बल्कि सामाजिक क्षेत्र में भी समन्वय एवं सौहार्द्र लाने की चेष्टा की। भगवान राम के माध्यम से ब्रह्मर्षि वशिष्ठ और वनवासी निषाद का मिलन कराकर, राम की सहायता हेतु वानर एवं भालुओं की सेना सजाकर, यही नहीं, राक्षस कुल में जन्मग्रहण करने वाले विभीषण को राम की शरण में लाकर गोस्वामीजी ने कितना बड़ा सामाजिक संतुलन एवं समन्वय स्थापित किया—यह चिन्तन का विषय है।

तुलसीदास का काल लोकमंगल की कामना से ओत-प्रोत है। लोक कल्याण की कामना से ही उन्होंने लोकभाषा में रामचरित मानस की रचना की जिसके प्रायः सभी पात्र आदर्शमंडित हैं। राम के अनुपम चरित के माध्यम से उन्होंने आदर्श राजा, आदर्श पुत्र, आदर्श मित्र, आदर्श पति, आदर्श भ्राता का जो महान दृष्टान्त हिन्दुसमाज के समक्ष रखा वह अमर है, अतुलनीय है, युगों-युगों तक हिन्दुसमाज को प्रेरणाप्रदान करने वाला है। सीता के द्वारा समाज में प्रतिव्रता का जो रूप स्थापित किया वह दुर्लभ है, अमानवीय है। राजा दशरथ प्राण त्याग देते हैं पर वचन नहीं तोड़ते। भरत का विलक्षण भातृप्रेम, हनुमान की भक्ति एवं सेवाभाव, लक्ष्मण का साहचर्य सभी अपने अपने में अतुलनीय हैं। गोस्वामी जी ने अपनी रामकथा के माध्यम से भगवान राम को राजा, रंक, धनी, निर्धन, मूर्ख, पंडित सबके हृदय में सदा के लिए बसा दिया। पूरे हिन्दु समाज को राममय बना दिया। किसी भी श्रेणी का हिन्दु हो वह अपने जीवन के प्रत्येक मुहुर्त में राम को अपने साथ पाता है; संपत्ति में, विपत्ति में, घर में, वन में, आंगन में, आनन्द-उत्सव में, कर्तव्य-पालन में जहाँ देखो वहाँ राम। हिन्दुसमाज के प्रति तुलसीदास जी की यही महती देन है।

❑

प्रवाह-का जल वेग से बहता हुआ किसी-किसी स्थान पर थोड़ी देर भँवर में घूमने लगता है, परन्तु फिर शीघ्र ही वह सीधी गति में वेग के साथ बह निकलता है। पवित्र हृदय, धार्मिक व्यक्तियों का मन भी कभी-कभी दुःख, निराश, अविश्वास आदि के भँवर में पड़ जाता है, पर वह अधिक देर तक उसमें अटका नहीं रहता, शीघ्र ही उससे छूटकर आगे निकल जाता है।

लड़का न होने पर लोग आँसुओं की धारा बहाते हैं, धन-सम्पत्ति नहीं मिली तो कितनी हाय-हाय करते हैं, परन्तु भगवान् के दर्शन नहीं हुए कहकर कितने जन व्याकुल होकर रोते हैं ? जो सचमुच भगवान् को चाहता है वह उन्हें अवश्य पाता है।

—श्री रामकृष्ण देव

मेरे गुरुदेव स्वामी यतीश्वरानन्द

–डॉ० निवेदिता बक्शी
कुरला, मुम्बई

दयालुं गुरुं ब्रह्मनिष्ठ प्रशान्तं समाराध्य मत्या विचार्य स्वरूपम् ।
यदाप्नोति तत्वं निदिध्यास्य विद्वान् परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि ॥

दयालु ब्रह्मनिष्ठ प्रशान्तचिन्त गुरु मुझे स्वरूप के बारे में विचार करना सिखाते हैं जिसे जानकर तत्व के ऊपर निदिध्यासन करके परमब्रह्म को जान सकता हूँ।

सन् १९६१ नवम्बर का महीना था। ठंढ़ अभी इतनी नहीं पड़ी थी। नागपुर शहर साफ सुथरा और स्वच्छ था। ११ वर्ष की एक बालिका पढ़ने में काफी तेज, खेलने-कूदने में भी सबसे आगे थी। आठवीं कक्षा की वह छात्रा थी। अपने माता-पिता की प्रथम संतान होने के कारण उसकी माँ उसे बड़े यत्न से बड़ी कर रही थी। रायपुर से उसकी माँ उस बालिका को लेकर सीधे नागपुर रामकृष्ण मठ आयी। सामने बैठे महापुरुष का हँसमुख सौम्य चेहरा और चेहरे पर असीम तेज मानो मठ के वातावरण में वे आध्यात्मिकता की चन्द्र किरण वरसा रहे थे। उस माँ ने अपनी बेटी की दीक्षा के लिए उन महापुरुष से अनुरोध किया। उन दिनों दीक्षा लेना कोई सहज कार्य नहीं था। दीक्षा के पहले काफी समय तक स्वामीजी वार्तालाप करते, कई प्रश्न पूछते और कितने ही लोगों को वापस लौटा देते थे। महाराज ने उस बच्ची से सिर्फ इतना ही पूछा–'क्या बेटी तुमसे बन पायेगा ?' उस बच्ची ने मासूमता से हाँ कहकर सिर हिला दिया। बस दूसरे ही दिन दीक्षा के लिए बुलावा आ गया। उन दिनों एक-एक को अकेले में मंत्र दिया जाता था। जब उस बच्ची को बुलाया गया, वह मंदिर के भीतर गई। सामने गुरुदेव और उनके पीछे ठाकुर माँ स्वामीजी की हियहारी छवि। बच्ची आसन पर शान्त भाव से बैठी। मंत्र उच्चारण हुआ। जैसे बच्ची का नवजन्म हुआ। फिर वह शान्त भाव से बाहर आगी। गुरुदेव ने उससे सिर्फ यही कहा–सवेरे उठकर बिस्तर पर पहले जप कर लिया करना। फिर माँ ने बेटी के जप के विषय में कई प्रश्न पूछे और महाराज आनंदपूर्वक उत्तर देते रहे। यही थी उस बच्ची के मन में गुरुदेव की प्रथम और अंतिम छवि जो अभी तक उसके हृदय पटल पर उज्ज्वल रूप से विराजमान है। गुरुदेव थे पूज्य स्वामी यतीश्वरानन्द और बच्ची थी मैं–निवेदिता

गुरु की कैसी असीम कृपा है कि धीरे-धीरे मैं जितनी बड़ी होती गई उतनी ही आध्यात्मिकता की ओर मेरी रुचि बढ़ती गयी। उनकी कृपा से सत्संग और साधुसंग की कभी भी कमी नहीं हुई। फिर भी मुझे गुरुदेव के बारे में अधिक कुछ मालूम नहीं था। जब कभी भी कोई मुझसे गुरुदेव के बारे में पूछता है, नाम सुनते ही मैं श्रद्धा से सिर झुका लेती हूँ। आखिर मैंने उनकी पुस्तकें पढ़नी शुरू की। पहले तो कठिन लगी फिर धीरे-धीरे समझती गई ।

स्वामी यतीश्वरानन्द जी का जन्म पौषपूर्णिमा की पुण्यतिथि में १९८९ ई० की १६ जनवरी को पावना जिले के नन्दनपुर नामक गाँव में हुआ था। पिता ईशान भट्टाचार्य स्कूल में शिक्षक थे। परिवार में संतान नहीं थी। इस कारण उनका जन्म आनंद की वर्षा लेकर आया था। नाम रखा गया सुरेश। उनकी दो बहनें और एक भाई थे।

पढ़ने में सुरेश मेधावी थे। उन्होंने अपनी प्रारंभिक शिक्षा जलपाईगुड़ी और रंगपुर में प्राप्त की। राजशाही और कूचविहार कॉलेज के पश्चात् बंगवासी कालेज में दाखिला लिया। फिर प्रेसीडेन्सी कालेज कलकत्ता में। वहाँ से संस्कृत में प्रथम स्थान में उत्तीर्ण होकर वे स्वर्णपदक के अधिकारी बने और बी.ए. पास किया। फिर एम.ए. की पढ़ाई केमिस्ट्री में की। ६ साल तक। पर पढ़ाई में रुचि नहीं होने के कारण आगे की पढ़ाई छोड़ दी। उन दिनों कॉलेज स्ट्रीट में कम कीमत में पुस्तकें बिकती थीं। वही पर उन्हें 'कथामृत' और स्वामी विवेकानन्द कृत 'राजयोग' को प्राप्त करने का सुअवसर मिला। जल्दी-जल्दी उन्होंने उन्हें पढ़ लिया। जीवन का उद्देश्य मिल गया। रास्ता मुड़ गया। बेलुड़ मठ की ओर। उस दिन एक शुभ तिथि थी। कोई उत्सव था। कई लोग एक प्रौढ़ तेजस्वी प्रसन्नचेतसा साधु को प्रणाम कर रहे थे। सुरेश ने भी उस भीड़ में शामिल हो उन महात्मा को प्रायः दस बार प्रणाम किया। बाद में पता लगा कि वे थे श्रीरामकृष्ण के मानसपुत्र स्वामी ब्रह्मानन्द जी। उस समय सुरेश को मालूम नहीं था कि वे ही उनके जीवन के कर्णधार हैं।

एक दिन दोस्तों के साथ सुरेश बेलुड़ मठ गये। स्वामी शिवानन्द जी ने इनका परिचय स्वामी ब्रह्मानन्द जी से कराया। वे उस समय भक्तों का हाथ देख रहे थे। उनके एक दोस्त का हाथ देखकर कहा–'सब अच्छा है, पर थोड़ी सी बाधा है।' पर सुरेश का हाथ उन्होंने

नहीं देखा। इससे सुरेश को लगा कि शायद उनके भाग्य में साधु जीवन नहीं है। वे मन मसोस कर चले गये।

एक दिन वे जैसे ही बेलुड़ मठ में गये तो स्वामी ब्रह्मानन्द जी के सेवक मिले। उनहोंने कहा, महाराज ने कहा था कि सुरेश संन्यासी बनेंगे। बस सुरेश के आनंद की कोई सीमा नहीं रही। उनहें त्याग का जीवन पसंद था, भोग नहीं। २२ वर्ष की उम्र में उन्होंने गृह-त्याग किया और बेलुड़ मठ आ गये। परिवार के सदस्य रो रोकर बेहाल हो गये। छोटी बहन ने दादा-दादा कहकर प्राण त्याग दिये पर वे पीछे नहीं मुड़े और अपनी अनन्त यात्रा में चल पड़े। १९११ में उन्होंने दीक्षा ली स्वामी ब्रह्मानन्द जी से।

सुरेश गुरुदेव से मिलने के लिये जगन्नाथपुरी गये। वहाँ उन्होंने सुरेश से जगद्धात्री पूजा करवायी। उसी समय सुरेश को गुरुकृपा से विराट् का अनुभव हुआ। सुरेश को मद्रास भेजा गया। जाते समय जब उन्होंने गुरु से कुछ उपदेश देने का निवेदन किया तो गुरु ने कहा—'संघर्ष, संघर्ष, वही उपदेश उनके जीवन का आधार बना।

वे मद्रास में ५ वर्ष रहे और १९१६ में स्वामी ब्रह्मानन्दजी से मिले। मद्रास में उन्हें आश्रम में मैनेजर का काम सौंपा गया था। स्वामी ब्रह्मानन्द जी उन पर बहुत बिगड़े और पूछा—'क्या मैंने तुम्हें इसी कार्य के लिये यहाँ भेजा है ? और वहाँ के अध्यक्ष सर्वानन्द "र भी बिगड़े और पूछा—'क्यूँ इस युवक को पढ़ने की सुविधा नहीं दी जा रही है और इससे क्लर्क का काम करवाया जा रहा है ? इसी दौरान स्वामी हरिहरानन्द जी ने सुरेश को स्वामी ब्रह्मानन्द जी के लिये जिंजीली तेल लाने बाजार भेजा। सुरेश भी उत्साह से घूम-घूम कर सर्वश्रेष्ठ जिंजीली तेल लेकर आये। स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने फिर उन्हें डाँटा—'क्या मैंने तुम्हें जिंजीली तेल कहाँ अच्छा मिलता है इसे जानने के लिए ही यहाँ भेजा है ?' वे सुरेश को अंतःस्थल से चाहते थे। यह सुरेश जानते थे और मन ही मन डाँट खाकर भी प्रसन्न रहते थे।

इसी समय स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने सुरेश को बुलाकर शास्त्र अध्ययन और उस पर चिंतन करने तथा नित्य "विष्णु-सहस्रनाम" का पाठ करने को कहा। इसका गहरा असर सुरेश के जीवन पर पड़ा। इसी समय वे गुरु के साथ कन्याकुमारी गये। जब ब्रह्मानन्द जी को पता लगा कि सुरेश को चंडीपाठ में रुचि नहीं है तो उन्होंने उसे हर १५ दिन में चंडी पाठ और हर रोज विष्णु सहस्र नाम का पाठ तीन वर्षों तक करने को कहा। और सुरेश ने तीन वर्षों से अधिक तक गुरु की आज्ञा का पालन किया।

कहीं अहंकार न हो जाये, इस भय से सुरेश प्रवचन नहीं देते थे। शास्त्रों को लेकर भी दूसरे के साथ तर्क नहीं करते थे। एक दिन ट्रावनकोर (त्रिवेन्द्रम) के हरिपाद आश्रम में स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने इन्हें प्रवचन देने को कहा। सुरेश ने पूछा कि मैं क्या कहूँ ? ब्रह्मानन्द जी ने कहा जो कुछ तुम हमलोगों से सुनते हो उसी को लोगों के सामने कहो ! शास्त्र का अध्ययन इस तरह से करो कि वह तुम्हारे अंतःस्थल में प्रवेश करे और स्वतःस्फूर्त होकर भाव निकलने लगे। अध्ययन इस तरह से करो कि यदि एक दिन तुम अध्ययन न कर सको तो तुम्हें लगे कि तुमने एक दिन खो दिया है। गुरु के आशीर्वाद से फिर सुरेश को जीवन में कभी भी भाव की कमी महसूस न हुई। गुरु ने शिष्य को थोड़ी सी कसरत भी सिखायी और किस तरह शरीर को स्वस्थ रखा जाय यह भी सिखाया।

अब सुरेश के जीवन में पवित्र दिन आ गया। जब स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने उन्हें १९१७ में संन्यास दिया उसी दिन उन्हें विराट् का आभास हुआ। गुरु कृपा ही केवलम्। उसी रात स्वामी ब्रह्मानन्द भावावस्था में थे, उन्होंने सुरेश से कहा—तुम क्या साधना कर सकते हो ? तुम द्वार-द्वार पर जाकर लोगों को ठाकुर का संदेश सुनाओ। और सुरेश को जीवन की दिशा मिल गयी। अब वे सुरेश से स्वामी यतीश्वरानन्द में बदल गये। यती अर्थात् संन्यासी। वे संन्यासी के संन्यासी थे और यही उन्होंने अपने जीवन में कर दिखाया। मद्रास मठ में एक दिन आरती के समय उन्हें विराट् का आभास हुआ और इसके बाद जब कभी वे आरती करते थे तो उन्हें यही आभास होता था। मद्रास मठ में काफी व्यस्त रहने के कारण वे अध्ययन के लिये समय नहीं निकाल पाते थे। इस कारण महाराज उन्हें बैंगलोर भेजना चाहते थे। गुरु को पता था शिष्य के द्वारा क्या करवाना है और उसके लिये क्या अच्छा है।

बैंगलोर में अध्ययन की सुविधा हो गयी और हर रविवार को उनको क्लास लेना पड़ता था। इस समय उन्हें गर्मियों के दिन में टायफाइड हो गया और उन्हें अस्पताल में भर्ती करवाया गया। उनकी हालत बिगड़ती गयी। उनके पास वाले बिस्तर का रोगी निमोनिया से एक ही दिन में चल बसा। अब उनके मन में यही भावना आई कि इतना कष्ट सहन करने की अपेक्षा मर जाना ही श्रेय है और उन्हें तुरंत स्वामी ब्रह्मानन्द जी का दर्शन हुआ। उन्होंने कहा—अरे ! तुम कैसे मरोगे ? तुम्हें तो ठाकुर श्री रामकृष्ण का बहुत काम करना है और

उनकी आँखों से अश्रु निकलने लगे तथा हमेशा के लिए उनके मन से मृत्युभय चला गया।

स्वामी यतीश्वरानन्द ने वाराणसी में स्वामी ब्रह्मानन्द जी का अंतिम दर्शन किया। उन दिनों वे ब्रह्म पुरुष स्वामी तुरीयानन्द जी की सेवा कर रहे थे। उन दिनों वाराणसी का रामकृष्ण मठ आध्यात्मिक भावना में डूबा हुआ था। गुरु ने शिष्य की आध्यात्मिक साधना के बारे में पूछा। उन्होंने उत्तर दिया कि उनके अन्दर जैसे आध्यात्मिकता का पूर्ण रूप से जागरण नहीं हो रहा है और मन में शांति नहीं मिल रही है। वे जैसे खराब संस्कार लेकर उत्पन्न हुए हैं जो आध्यात्मिक साधना की बाधाएँ हैं। महाराज ने उन्हें महानिशा जाप और निश्चित संख्या में जप करने के लिए कहा और शिष्य के सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। गुरु की इच्छा थी कि वे जाकर मायावती में 'प्रबुद्ध भारत' पत्रिका का कार्य सम्भालें। गुरु की इच्छा को शिष्य ने शिरोधार्य किया। जाने से पहले महाराज ने स्वामी शुद्धानन्द जी और माधवानन्द जी के सामने उनकी साधना के बारे में पूछा। उन्होनें कहा कि अधिक कार्य के कारण साधना ठीक से नहीं चल रही है। महाराज ने कहा कि यह गलत धारणा है और मन की चंचलता के कारण है। उन्होंने उन्हें गूढ़तम उपदेश दिया—कार्य और साधना साथ-साथ होनी चाहिये। Work & Worship should go together. महाराज ने उपदेश दिया कि ठाकुर, माँ, स्वामीजी का कार्य कभी भी वंधन का कारण नहीं होगा, बल्कि आध्यात्मिक मानसिक उन्नति होगी। तुम उनके गुलाम बन जाओ और अपना सर्वस्व उन्हें समर्पित कर दो। असल है मन। मन को वश में करने के लिए कर्म करना चाहिये। हर कार्य ईश्वर का कार्य समझकर करो और शिवज्ञान से जीवसेवा करो और सत्संग साधुसेवा बहुत आवश्यक है। किसी भी तरह से ईश्वर से जुड़े रहना है। मन को पहले अभ्यास योग से बांधना पड़ता है। हर कार्य ठाकुर माँ स्वामीजी का कार्य है।

स्वामी यतीश्वरानन्द जी के मन में क्षोभ था कि वे गुरु का संग अच्छी तरह से नहीं कर पाये। कालीपूजा के विसर्जन की शाम को गुरु के पास रहे थे। स्वामी ब्रह्मानन्द पेतापुरी और स्वामी विशुद्धानन्द के साथ बैठे थे। उन्होंने उनके आने से पहले ही कहा था, देखो सुरेश आ रहा है। जैसे ही उन्होंने प्रवेश किया, स्वामी ब्रह्मानन्द जी बोल उठे—'देखो मैं कैसा योगी हूँ।' गुरु शिष्य के मन की बात जानते थे और काफी देर तक बातचीत करते रहे। उनके मन का क्षोभ अभिमान सब दूर हो गया और जीवन में नई दिशा मिल गयी।

अब वे मायावती आ गये और 'प्रबुद्ध भारत' पत्रिका का भार संभाला। वहाँ का ध्यान-गंभीर-हिमालय उनके ध्यान के लिए कर्म के लिए उपयुक्त सिद्ध हुआ। उनकी नियम-निष्ठा देखने लायक थी। प्रतिक्षण उनका घड़ी की सुई से बँधा हुआ था। उस समय प्रभु महाराज भी उनके साथ थे। सबेरे ४ बजे सबको ध्यान में बैठना पड़ता था। नियम का उल्लंघन नहीं होता था। एक बार प्रभु महाराज ने क्रिसमस ईव के दिन रात को १२ बजे घंटा बजाया। महाराज ने उठकर देखा तो १२ बजे थे। फिर अपने कमरे में चले गये। सबेरे उठकर जब असली बात का पता लगा तो महाराज भी दिल खोलकर हँसने लगे। यह थी उनकी सरलता। चार वर्ष मायावती में विताने के बाद वे मुम्बई आश्रम में मठाध्यक्ष बने।

सन् १९२४ ई० में मुम्बई आये। १९२५ में स्वामी शिवानंदजी ने मुम्बई आश्रम की भित्ति स्थापना की और १९२६ में ठाकुर को प्रतिष्ठित किया। बड़ी ही मिहनत से मुम्बई आश्रम के कार्य को उन्होंने संभाला और सुव्यवस्थित ढंग से कार्य करते रहे दो वर्षों तक। स्वामी यतीश्वरानन्द जी को स्वामी ब्रह्मानन्द जी की पादुका आशीर्वाद स्वरूप भेंट में मिली थी। वे भरत की तरह कार्य करते थे। दीक्षा देने के समय भी दीक्षार्थियों को पादुका स्पर्श कराते थे। उनके मन में बिल्कुल अभिमान नहीं था। स्वयं को ठाकुर का पालतू कुत्ता कहते थे। अपने जीवन को इतने सुसंस्कृत ढंग से बाँध लिया था कि ठाकुर के प्रिय शिष्य स्वामी सुबोधानन्द जी कहते थे—अगर साधु देखना है तो सुरेश को देखो। ईश्वर की उन पर विशेष कृपा थी। वचनामृतकार मास्टर महाशय भी उन्हें स्नेह करते थे। उन्हें दो बार माँ सारदा का दर्शन हुआ था।

मुम्बई से वे मद्रास में मठ के अध्यक्ष बने। सिर्फ ९ साल पहले वे वहाँ पर ब्रह्मचारी थे। उस समय प्रभु महाराज भी उनके साथ थे। उन्होंने 'वेदान्तकेसरी' पत्रिका का भार लिया।

सर्वानन्द स्वामी उन्हें उच्चकोटि का साधु मानते थे। वे मठ का परिचालन सुव्यवस्थित तंग से करने लगे। नित्य ध्यान-जप, शास्त्रचर्चा, व्यायाम, मितभाषी, तेजोमय चेहरा, चलना फिरना वार्तालाप-हर कार्य में आध्यात्मिकता झलकती थी। १९३० में थोड़े दिन के लिये तपस्या करने गये फिर मद्रास लौट आये।

३ जुलाई १९३३ में जर्मनी के भक्त विजवादेन की चिट्ठी आई कि वहाँ पर एक आदर्श साधु को भेजा जाय। उनके यातायात का खर्च, रहने की व्यवस्था

वे ही करेंगे। वे वेदान्त का ज्ञान पाना चाहते थे। संघ ने स्वामी यतीश्वरानन्द जी को मनोनीत किया। स्वामी शिवानन्द ने उनके सिर पर हाथ रखकर आर्शीर्वाद दिया और वे जर्मनी के लिये रवाना हो गये। धीरे-धीरे उनकी वार्ता के संस्पर्श में आकर लोग धन्य हुए और ठाकुर को मानने लगे। दो वर्ष बीत गये।

वे १९३५ में स्वीट्जरलैंड गये और उन्होंने वेदान्त के अमोघ आदर्श को सेन्ट मरिटस से जिनेवा और जूरीख तक फैलाया। विभिन्न स्थानों पर वेदान्त पर प्रवचन और प्रश्नोत्तरी शुरू हुई। वे कभी पेरिस कभी लन्दन जाकर वेदान्त प्रचार करने लगे। इस प्रकार ५ वर्ष बीत गये। जर्मनी से स्विटजरलैंड जूरीख और जिनेवा आदि स्थानों में भक्तगोष्ठी की स्थापना हुई। उसके बाद वे हेंग शहर में आ गये। ४ महीने तक वहाँ रहे और वहाँ के लोग वेदान्त की ओर आकृष्ट हुए। इस तरह स्वीजरलेंड, हालैंड, इंगलैंड और फ्रांस चारों देशों में वेदान्त गोष्ठी की स्थापना की और भक्तों से सम्बन्ध बनाये रखा।

उनकी विशेपता यह थी कि वे भक्तों से जीवन पर्यन्त सम्बन्ध बनाये रखते थे। पत्रोतर नियमित रूप से देते थे। हर प्रश्न का उत्तर धीरज़पूर्वक देते थे। कैसे शिष्यगण की आध्यात्मिक उन्नति हो इसका ध्यान हमेशा रखते थे।

स्वीडेन से गीता पर प्रवचन देने के लिये बुलावा आ गया। उसी प्रवचन की शृंखला में हैमिलटन दम्पत्तियों का मन जीत लिया। करीब ९ महीने तक गीता प्रवचन की शृंखला चलती रही। उनके मन में मध्यरात्रि का सूर्य देखने की इच्छा जगी। यह नाँखे में सूर्य के उत्तरायण होने के समय दिखता है। विश्वात्मा का यह अनोखा खेल देखने वे वहाँ मध्यरात्रि में उपस्थित हुए। यथारीति मध्यरात का आकाश सूर्योदय की आभा से आलोकित हो उठा। इसे देखकर सभी अभिभूत हो गये।

१९४८ ई० के अप्रैल महीने में किसी ने उनके कानों में Burgen जाने को कहा। यह ठाकुर का ही आदेश था। जहाज ने निर्विघ्न रूप से उन्हें अमेरिका पहुँचा दिया। इस समय यूरोप में युद्ध और मानव संहार की लीला चल रही थी। एशिया का भी यही हाल था। चारों ओर हाहाकार मचा हुआ था। मनुष्य में अविश्वास, हिंसा, द्वेप और शक्ति का अहंकार फैला हुआ था। स्वामी यतीश्वरानन्द जी मानव शांति के लिए प्रार्थना करने लगे।

ढेढ़ वर्ष उन्होंने हॉलिवुड केन्द्र में स्वामी प्रभवानन्दजी को सहयोग किया। तत्पश्चात् वे फिलाडेल्फिया आये। ६ वर्षों तक वहाँ वेदान्त का प्रचार किया और सफल रहे। उनका वेदान्तमय जीवन देखकर लोगों को आश्चर्य होता था। सेन्टर (केन्द्र) खूब आगे बढ़ा, पर योग्य कर्मी न होने के कारण सफल केन्द्र को बन्द करना पड़ा। अब वे न्यूयार्क आये और फिर यूरोप की यात्रा शुरू की।

दीर्घ ९ वर्ष अमेरिका के युद्धयज्ञ में लड़ाई करते-करते अब वे फ्रांस अये। उन्होंने स्वामी सिद्धेश्वरानन्द जी के साथ कर्म-यज्ञ शुरू किया। फॉकि नामक एक व्यक्ति ने उनके संपर्क में आकर अपना जीवन बदल डाला। उन्होंने उसे मंत्र दीक्षा दी और फॉकि ने खूब आध्यात्मिक उन्नति की। अब वे स्वीडेन गये। मिसेस कान्नास्टर्म के परिवार से मुलाकात हुई। वे भक्तों के साथ पत्र से भी संबंध रखते थे।

इतने वर्षों के परिश्रम के बाद वे मातृभूमि लौटे। भारत की इस पवित्र भूमि को स्पर्श कर उनका मन शांत हो गया। कामारपुकुर में मंदिर के उद्घाटन के समय वे स्वामी विरजानन्द जी महाराज के साथ वहाँ गये और उत्सव में योगदान देकर सबके मन के आनंद से पूर्ण कर दिया।

स्वामी यतीश्वरानन्द जी को जो कमरा बेलुड़ मठ में दिया गया था। आश्चर्यवत् दक्षिणेश्वर भवतारिणी माँ के मंदिर और बेलुड़मठ में ठाकुर के मंदिर चूड़ा को यदि सरल रेखा से खींचा जाय तो उनका कमरा बीचों बीच था। महाराज को कई बार दिव्य दर्शन हुए। एक ज्योति की रेखा सीधे दक्षिणेश्वर मंदिर से बेलुड़ मंदिर के शिखर को स्पर्श कर रही है।

१९५१ में महाराज ने बंगलोर के आश्रम का भार लिया। और उसे सुचारु रूप से चलाने लगे। रामकृष्ण मिशन के नियम के अनुसार सिर्फ अध्यक्ष ही दीक्षा दे सकते हैं पर स्वामी यतीश्वरानन्द जी को दीक्षा देने का अधिकार दिया गया। दीक्षा देने के बारे में वे कठोर नियमों का पालन करते थे। कभी भी आमने-सामने विवेचना के बिना दीक्षा नहीं देते थे। पूजा ९ बजे मंत्रोंच्चारण के द्वारा शुरू होती थी। पूजा के अंत में विवेचना करते थे फिर एक-एक को बुलाकर दीक्षा देते थे। उम समय एक अपूर्व आध्यात्मिक भाव का उदय होता था और गुरु की पादुका को शिष्यों के सिर से छुलाते थे। ये यंत्र स्वरूप कार्य करते थे। यह दीक्षा का कार्य ठाकुर का ही कार्य है, इस तरह से करते थे।

अब महाराज सिंगापुर से लेकर नागपुर, मैसूर बेलुड़ सब जगह दीक्षा के लिये जाते थे। अपने एक शिष्य को पत्र में उन्होंने लिखा था, जितना हो सके देते

जाओ। दान करते जाओ। बदले में कुछ मत मांगो। किसी से आशा मत रखो। देह मन स्वस्थ रखने की कोशिश करो। क्षुद्र सुख स्वाच्छन्द्य के लिये बड़े दुःखों का आवाहन मत करो। भारत के कोने-कोने में जाकर वे दीक्षा देते थे। उस आनन्दमय दिव्य पुरुष के सामने बैठकर कितने ही युवक डॉक्टर, वकील आदि ने संन्यास ले लिया। और आज वे उच्च संन्यासी के रूप में जाने जाते हैं। धीरे-धीरे उनकी कमर में पीड़ा होने लगी। फिर भी वे अपने शरीर की परवाह किये बिना दूसरों के लिये कार्य करते जाते थे।

सुदूर हॉलेंड से एक वृद्ध दम्पत्ति सिर्फ महाराज से मिलने भारत आये। हैदराबाद में पति हृदय रोग से आक्रान्त होकर मृत्यु के मुख में समा गये। जब स्त्री महाराज के पास आ पहुँची तो रो पड़ी। क्यूँ इस तरह का विच्छेद हुआ ? महाराज व्यथित हुए और अपने गंभीर स्वर से उन्हें समझाते रहे। इस प्रकार उस महिला के शोक का शमन हुआ।

महाराज शुद्ध हास-परिहास करने में भी कुशल थे। उनकी कहानियों और आध्यात्मिक चुटकुलों की एक छोटी सी पुस्तक है–Spiritual Titbits, Adventure of Religious life. ये बहुत ही जानी मानी पुस्तकें हैं और आध्यात्मिक पुस्तकों की प्रथम स्तरीय पुस्तकों में उसका स्थान है। द्वितीय है Meditation and Spiritual Life वह तो ब्रह्मचारियों और संन्यासियों के लिये Bible की तरह है। उनकी Devine Life, universal prayer आदि कई प्रख्यात पुस्तकें हैं। उनके ज्ञान-गंभीर प्रवचन तलस्पर्शी होकर मन को छू जाते थे। शरीर की चिकित्सा के लिए कुछ दिनों तक वे रामकृष्ण मिशन इंस्टिट्यूट ऑफ कल्चर में रहे थे। उस समय की संध्या की कक्षाएँ, प्रश्नोत्तर आदि आज भी लोगों के लिए एक मधुर स्मृति बन गयी है। उनके आध्यात्मिक जीवन की उच्चता को देखकर लोगों का सिर नम्रता से झुक जाता था। दीक्षा के समय जो भी धोती चादर आदि मिलती थी उन्हें वे भक्तों में बाँट देते थे। उनकी कृपा से प्रेरित होकर कितनी ही युवतियों ने सारदा मठ में त्यागपूर्ण जीवन जीने का संकल्प लेकर संन्यास ग्रहण किया।

जप के बारे में वे कहते थे कि मंत्र का भावार्थ जानकर बड़ी तन्मयता से जप करना चाहिये। निष्ठावान जापक को चिदानन्द तक पहुँचने में ज्यादा समय नहीं लगता है। ध्यान में एकाग्रता लाने के लिए सिर्फ अभ्यास ही एक पथ है। मंत्रार्थ जप की तीन सीढ़ियाँ हैं। प्रथम सीढ़ी पर उज्ज्वल आनन्दमय इष्ट के रूप की चिंता करे और जप करता रहे। दूसरी सीढ़ी पर इष्टदेव के महत् गुणों के बारे में चिंतन–जैसे पवित्रता आदि तीसरी सीढ़ी मन में अनंत चितशक्ति की चिंता, परमात्मा के स्वरूप की चिंता जो आत्मा में विराजमान है। जप संख्या महत्वपूर्ण नहीं है उसमें अनुराग ही महत्त्वपूर्ण है। वे जपध्यान, प्रार्थना और ध्यान धारणा पर जोर देते थे।

बाटा नगर का एक युवक मठ मिशन में बचपन से ही आता था। वह अविवाहित और सरल था। अभी तक दीक्षा नहीं ली थी। महाराज की तबीयत ठीक नहीं थी। दिन ठीक हुआ था पर दीक्षा नहीं हो सकी। महाराज के स्वस्थ होने पर २६ जनवरी का दिन निर्धारित हुआ। उस दिन युवक की तबीयत बिगड़ गई। पर दीक्षा के दिन थोड़ा स्वस्थ हुआ। स्नानादि कर दौड़ कर महाराज के पास गया। उसके आने के पहले ही महाराज अपने सेवक सोमनाथ को कहने लगे–सोमनाथ देखो तो बाटा नगर का युवक आया कि नहीं। दीक्षा पाकर युवक धन्य हो गया। ऐसा शिष्य जिसके लिये गुरु को प्रतीक्षा करनी पड़ी। महाराज रोज वचनामृत पढ़ने पर जोर देते थे और भक्त को पैरों पर सिर लगाने से मना करते थे। कहते थे सिर गुरु का स्थान है। फल कभी भी पैरों पर अर्पण करने नहीं देते थे। सुन्दर फूलों की मालाओं को देखकर कहते, जाओ-जाओ ठाकुर को अर्पण कर आओ। धीरे-धीरे उनका स्वास्थ्य बिगड़ता गया।

महाराज के आश्रित जर्मन भक्त (Kurt Fredrich) कर्ट फ्रेडरिच दम्पती बहुत ही घनिष्ट थे। महाराज उनकी प्रशंसा करते थे। वे हामबुर्ग वेदान्त ग्रुप के हैं। भक्त बुद्धिमान और कर्मठ हैं। वे स्वामी विवेकानन्द की पुस्तकें कितनी चाव से पढ़ते हैं। हमारे देश में लोग इतना नहीं पढ़ते हैं। विचार भी नहीं करते हैं। यहाँ के भक्त सिर्फ कहेंगे, कृपा करो। अरे, कृपा करेंगे ठाकुर। वहाँ पर भक्त नाना तरह की उच्च चर्चा करके मुझे आनंद में रखते थे। यहाँ पर सिर्फ व्यक्तिगत सुख दुःख की बातें करते हैं। एक विदेशी भक्त ने बेलुड़ मठ आकर महाराज से कहा–महाराज आप बहुत बदल गये हैं। महाराज जी हँसते-हँसते बोले, मैं नहीं तुम बदल गये हो। तुम नहीं जानते हो कि आत्मा कभी नहीं बदलती। हम संन्यासी हैं। हम कभी भी नहीं बदलते। तुम्हारे देखने का ढंग बदल गया है। क्योंकि तुम भूल गये हो कि तुम आत्मा हो। विदेशी भक्त को अपनी गलती समझ में आई और वह लज्जित हुआ। बड़े-बड़े शास्त्रों को पढ़कर भी हमारा देहात्मभाव नहीं जाता है। अक्सर संसारियों को तो बिल्कुल भी नहीं जाता। हमारी आध्यात्मिक साधना केवल पढ़ने तक ही सीमित रहती है।

११ मार्च, १९६५ बृहस्पतिवार। दीक्षा देने के लिये गये। यशोरहाट के शिकारपुलीन गाँव के ब्रह्मानन्दधाम में। गुरु के जन्म स्थान पर तीन दिन तीन रात्रि वास करेंगे। इस उद्देश्य से गये। साथ में कुछ भक्त भी गये। गाँव आनंद के समुद्र में बह गया। भक्तगण महाराज के साथ २४ घंटा रहे। महाराज भी शिशु की तरह आनन्दित। सबके मन में अटल स्मृति के रूप में अंकित हो गया। यहीं पर महाराज ने अंतिम दीक्षा दी। उन्होंने करीब ४८९४ भक्तों को दीक्षा दी थी। उनमें से ७९ विदेशी भक्त थे।

३० मार्च को महाराज बंगलोर चले गये। जाने के पहले उनके स्वास्थ्य की पूरा जाँच हुई। भक्तगण से मिले। उनके साथ संज्ञानन्दजी महाराज थे। उन्होंने महाराज से कहा आप अपने शरीर के संबंध में डाक्टर से कुछ नहीं पूछेंगे। महाराज ने गम्भीर स्वर में कहा Somnath I am not afraid of death सोमनाथ मैं मृत्यु से नहीं डरता। बंगलोर आकर शरीर थोड़ा ही ठीक हुआ। कमर का दर्द वैसा ही रहा। जून में कमर का दर्द बढ़ गया। चलना फिरना भी बंद हो गया। ठाकुर के शरणागत थे। जुलाई में वे चल भी नहीं सकते थे। शरीर भी दुर्बल हो गया था। स्वामी वीरेश्वरानन्दजी बंगलोर में दो दिन के लिये महाराज को देखने आये।

मई में उनकी तबीयत खराब होने की वजह से शक्कर की बीमारी हो गयी। शरीर का वजन ५ पाउंड कम हो गया। शरीर के कारण मन भी व्यथित रहता था। इस कारण वे कहते थे, जिस चैतन्य के प्रकाश को मैं हर समय देख सकता था इस शरीर के कारण वह भी नहीं देख सकता। मैं उस नित्यदर्शन के सुख से वंचित हो रहा हूँ। नित्य और लीला का योगसूत्र भी मुझसे छिना जा रहा है। अव इस देह की क्या जरूरत ? जुलाई में स्वामी वीरेश्वरानन्दजी को देखकर महाराज उत्तेजित होकर कांपने लगे। वे महाराज को व्हीलचेयर में लेकर घुमा कर आये। ठाकुर घर में भी लेकर गये।

६ अक्टूबर को रामकृष्ण मिशन के प्रेसीडेन्ट स्वामी माधवानन्द जी ठाकुर के चरण में मिलित हो गये। महाराज की आँखों से अश्रु गिरने लगे। अब नये अध्यक्ष के पद के लिये स्वामी यतीश्वरानन्द का नाम निर्वाचित किया गया। पर उन्होंने मना कर दिया। उन्हें अध्यक्ष पद के प्रति भी कोई मोह नहीं था। अव वे रामकृष्ण के चरणों में मिल जाने के लिये तैयार हो रहे थे। वे बार-बार कहते थे, स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने अपनी शक्ति मुझसे वापस ले ली है। मैं अव इस शरीर का भार ग्रहण करने लायक नहीं हूँ। अब भक्तों से नहीं मिलते थे। उनके कष्ट को नहीं सुनना चाहते थे। अब ज्यादा तर मौन रहते थे। पूज्यपाद अभयानन्दजी व निर्वाणानन्द जी ने बंगलोर में उनसे अध्यक्ष पद ग्रहण करने के लिये आखरी चेष्टा की। पर सब चेष्टा असफल रही। वे दोनों महाराज को लेकर 12 दिसम्बर, १९६५ में बेलूड़ मठ आ गये।

भक्तगण सब उनसे मिलने के लिये उत्सुक थे। पर डॉक्टर ने अनुमति नहीं दी।

२८ दिसम्बर को महाराज से एक भक्त परिवार को मिलने दिया गया। पर महाराज ने अब भक्तों को पहचानने से इन्कार कर दिया। महाराज को वापस इस जंगल में लौटाना मुश्किल था। उनका मन अब रामकृष्ण के चरणों में मिल गया था।

रंगून के एक आश्रित भक्त महाराज की सेवा करने के लिये बेलुड़ मठ आये। दीर्घ समय तक उनके मन में महाराज की सेवा करने की इच्छा थी। अब वह इच्छा पूरी हो रही थी। महाराज उनके मन की खबर जान गये। उनसे पूछा—क्या तुम संतुष्ट हो ? ब्रह्मचारी ने कहा—अभी तो सिर्फ शुरू ही है। महाराज ने कहा अब समय ज्यादा नहीं है। मेरे अंतिम समय तुम और सोमनाथ दोनों नहीं रहोगे।

महाराज की तबीयत बिगड़ने लगी। उन्हें एक छोटे नर्सिंग होम में ले जाया गया। वहाँ फोन की भी व्यवस्था नहीं थी। साधुगण जब उन्हें देखने आये, उनकी हालत देखकर उन्हें रामकृष्ण सेवा प्रतिष्ठान में भर्ती कराया। रात को १ बजकर १५ मिनट में जब सब विश्राम करने चले गये थे, गुरुदेव श्री रामकृष्ण के चरणों में मिलित हो गये।

इस तरह एक महान जीवन इतने महान कार्य करने के पश्चात् ठाकुर के श्री चरणों में लीन हो गये। हमें उनके जीवन से शिक्षा लेनी है कि किस प्रकार आध्यात्मिक जीवन जिया जाय। किस तरह ठाकुर की शरण में जायें और किस तरह देहात्म भाव से ऊपर उठें।

ऐसे गुरु को मैं बारम्बार प्रणाम करती हूँ। गुरु की कृपा हमारे साथ सदा रहेगी यह मैं निश्चयपूर्वक जानती हूँ।

❑

ट्रस्टीशिप मैनेजमेंट के विषय में मेरे अनुभव

–श्री कान्तिसेन श्रोफ

हमारे माता-पिता ने अपनी छत्रछाया में कर्मनिष्ठा, एक साथ मिल कर रहना, जियो और जीने दो, तथा पुरुषार्थ करने की सच्ची सहकार की भावना के आचरण का बीज हमारे जीवन में बोया था। हम सभी यह मानते थे कि सब में एक ही ईश्वर रहता है। हम सब एक हैं, समान हैं। परिवार में कोई भी कार्य हम सब मिल कर करते। सबके साथ मिल कर काम करने का आनन्द अलग ही है। घर का या कुटुम्बों का काम करने में हमें कोई शर्म नहीं थी। सबके साथ मिलकर काम करते तो सभी का सहयोग, बुद्धि, कार्य कुशलता, समझदारी, सहकार और समभाव का लाभ सबको मिलता। अभी हमें आजादी नहीं मिली थी, हमारे पिता बार-बार कहते, 'हम भले ही अंग्रेजों को धिक्कारें और उन्हें भारत से हटाने के प्रयास करें परन्तु उनसे आज्ञाकारिता, अनुशासन प्रियता, कार्य निष्ठा, स्वच्छता और आरोग्य, सभ्यता, शिक्षण और व्यवहार पटुता, तथा देश प्रेम जैसे गुण सर्वप्रथम हमें अपने जीवन में उतारने पड़ेंगे। इसके बाद ही हम स्वराज का सच्चा प्रयत्न कर सकते हैं। और भ्रातृभाव, सर्वसमान भाव और सर्वकल्याण भावना जब अपने भीतर जगाएँगे तो ही स्वराज मजबूत बन सकेगा। पश्चिम की विज्ञान टेक्नोलोजी उद्योग और परिश्रमशीलता पर भारत को ले जाने का हमें बहुत अधिक प्रयास करना पड़ेगा। इसके लिए हमें सारी क्षमताओं को समझना पड़ेगा। देश के लोगों के हित के लिए भी सभी नई वैज्ञानिक दृष्टि के साथ-साथ कार्य निष्ठा भी अपनानी पड़ेगी। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद और दूसरे विश्वयुद्ध से पहले यूरोप में जन्मा नया समाजवाद और पूंजीवाद के विचारों, कार्लमार्क्स के विचार, स्वामी विवेकानन्द का दरिद्र देवो भव 'अज्ञ देवो भव', 'मूर्ख देवो भव,' 'दुःखी सतप्त देवो भव', शिव भाव से जीव सेवा के अदर्श, महात्मा गाँधी के सर्वोदय द्वारा, रामराज द्वारा ग्रामोद्धार और सर्वोद्धार के विचार हम सब के मन में हर समय स्थित रहते थे।

१९३९ में दूसरा विश्व युद्ध शुरू हो गया। विदेश से आने वाला माल धीरे-धीरे कम होने लगा। और अब अपने देश में अनेक तरह के रसायनों की मांग बढ़ती जा रही थी। इतने वर्षों के प्रयोगों द्वारा हमने विचार किया कि छोटे उद्योग के रूप में रसायन उद्योग शुरू करें। कई मित्रों की मदद से १० हजार रुपए से १९४१ के नवम्बर माह में बम्बई की एक छोटी सी जगह में एक्सेल शुरू किया। यह निश्चय किया कि थोड़े समय में ज्यादा पैसा कमाने के लिए यह उद्योग शुरू नहीं किया था। पर यह जीवन के मूल्यों को सामूहिक तरीके से अमली जामा पहनाने का स्थान है और रहेगा, इस आदर्श के साथ हम सब काम करते थे।'

Profit is the by-ploduct of the services given. Be innovative and always locate easily available raw materials to produce valuable goods for the customer. इन तीन मंत्रों के साथ 'एक्सैल इंडस्ट्रिज' आगे बढ़ती गई। दस हजार में तो कारखाना चलना नहीं था। पर काम शुरू करने के लिए एक जगह थी। काम तो इन मूल्यों को आधार रख कर आगे बढ़ाना था। इस देश में हमें देख कर दूसरे भी इन मूल्यों पर आधारित उद्योग स्थापित करें और भले ही अंग्रेजों का राज्य हो पर हम ऐसा काम कर दिखाएँ कि सब को भान हो, यह थी इस कार्य को शुरू करने के पीछे हमारी भावना। उस समय दिल्ली से भी उद्योगों का निमंत्रण था। इसलिए इस काम से दिल्ली भी जाना पड़ता। हमारे आचरण और शुद्ध भावना, शुद्ध बर्ताव से अधिकारियों के मन में भी हमारे प्रति सम्मान का भाव उपजता था। थोड़े से समय में फायदे लाभ के लिए कभी भी कोई कच्चा माल अधिक और जल्दी तैयार करने का प्रयत्न नहीं करता था। कई लोगों को लगता कि ऐसे कहीं धंधा होता है ? और ऐसे क्या पैसा मिल सकता है ? पर हमारे मन में यह स्पष्ट भाव था कि पैसा अधिक कमाने वाला लंबे समय तक नहीं टिक सकता। आज उनके पैसा बनाने वालों में से कोई दिखाई नहीं देता।

उद्योग समाज के स्तर को ऊँचा रखें और उसकी जवाबदारी स्वीकारें ऐसे स्पष्ट आदर्श के साथ हमारा काम भली-भाँति चल रहा था। अब हमें अधिक जगह की जरूरत थी। इसलिए जोगेश्वरी में भैंसों के तबेले में (जो खाली था) काम चलाने के लिए किराए पर लिया। काम करने वालों में से बहुत से लोगों को लिखना-पढ़ना नहीं आता था। उन सब को काम सिखाने की जिम्मेदारी मेरे मित्र, स्वदेश कल्याण की भावना वाले, वैज्ञानिक दृष्टि वाले श्री चांदराज भाई ने अपने ऊपर ले ली। अपने को काम आए और फिर दूसरों को सिखाएँ इस मुश्किल कार्य को सहज और सरल बनाना था। उद्योग का ज्ञान, पुस्तकें और अभ्यास। मेरे पिता के समय से घर में पुस्तकें तो रहती थीं। कारखाने में तो अब अधिक पुस्तकें आने लगीं। दुनिया भर का ज्ञान पुस्तकों में से मिलता। जैसे-जैसे काम में ज्ञान और कार्यकुशलता से हमारे काम में निपुणता आती गई वैसे-वैसे ही हमारे

सभी साथियों की मदद से अधिक काम शुरू हो गया। पगार तो सब लें पर वह मजदूर न हो एक साथ सब सहकार्य करें–ऐसी भावना से हम मिलकर काम करते। जैसे-जैसे काम बढ़ता गया, कुटुम्ब के बाकी सदस्यो इसमें शामिल होते गए। मैं तो था आर्टिस्ट। पर ऐसे उद्योग में काम करके देश की सच्ची सेवा हो सकती है ऐसा ख्याल मन में आया। श्री चांदराज भाई के प्रयोगों ने घर में तो मदद की पर अब एक्सैल में ही काम करने का निर्णय लिया। आर्टिस्ट था इसलिए एकाग्रता चाहिए थी, सो तबेले में ही रहने का निर्णय किया। रात-दिन कारखाने में काम चलता, दिन-रात लोग काम में लगे रहते। उन सबसे धीरे-धीरे मैं भी काम सीखने लगा। भट्टी की छोटी-मोटी कारीगरी सीखते-सीखते मैं एक सर्जन की तरह व्यस्त रहने लगा और मुझे काम करने में मजा आने लगा। उद्योग में तो आनन्द आने लगा, साथ ही सबके साथ मिल कर काम करना अच्छा लगने लगा। ज्ञान मिल कर काम करने से मिलता है, संशोधन कर काम करने से मिलता है। काम एक दूसरे के सहयोग से सिद्ध होता। सभी ज्ञानेन्द्रियों की मदद से सच्चा अनुभव और ज्ञान मिले इसका पूरा-पूरा ज्ञान हमें तब मिला। अक्षर ज्ञान की इसमें थोड़ी भूमिका रहती है। दिन-रात साथ रहने छोटे-बड़े का भेदभाव न रहे तो उद्योग में उत्पादकता का-सर्जन का आनन्द मिल सकता है। लैबोरेटरी में प्रयोग हो और तुरन्त काम करना हो तो साधनों का होना भी वहाँ तक जरूरी है। लकड़ी का काम, लोहे का काम, कड़ियाकाम, इलेक्ट्रिकल काम, वैल्डिंग-मोल्डिंग का काम यह सब सीखना पड़ा। अपने आप को सब कामों में पारंगत करना यह सब मिल कर काम करने से आ जाए। स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में कहें तो, मानव के भीतर रहने वाली सभी शक्तियों का प्रकटीकरण और अपनी पूर्णता का आविष्कार ही शिक्षण है, इस आदर्श का हमें अनुभव हुआ। सभी विचारकों में से स्वामी विवेकानन्द के विचार मेरे जीवन और दैनिक कार्यों में सबसे ज्यादा उपयोगी रहे। जो लोग दूसरों के लिए जीते हैं वह सच्चा जीवन जीते हैं। बाकी सब तो जीते हुए भी मृत समान हैं। इस वाक्य ने हमारे जीवन में सबसे अधिक प्रभावे डाला था। हमारा एक भाई श्री रामकृष्ण मिशन में १९३९ से शामिल था, इसलिए श्री रामकृष्ण विवेकानन्द के विचारों का हम पर अधिक असर है। इस भाई का १९४९ में निधन हो गया पर रामकृष्ण मिशन के साथ हमारा सम्बन्ध अधिक गाढ़ा हो गया। स्वामी जी के व्यावहारिक वेदांत विषय के भाषण-लेख हमारे लिए मार्ग दर्शक बन गये।

हमारी माँ भी फैक्टरी में रहने के लिए आ गई। वह सभी काम करने वालों की माँ बन गई थी। उनके खाने-पीने तथा स्वास्थ्य के बारे में वह बहुत ध्यान रखती। अभी तक वो लोग उनका गान करते हैं। विज्ञान का उपयोग देश के कल्याण के लिए करना चाहिए। इस बारे में हमने कभी छूट नहीं दी। १९४७ में देश स्वतन्त्र हुआ। नए-नए काम करने की जरूरत बढ़ती गई। सभी पढ़े-लिखे, अनपढ़, छोटे-बड़े, भिन्न-भिन्न भाषा-संस्कृति वाले साथियों के साथ मिल कर नए-नए काम करने में आनन्द आता था। थोड़े समय में और थोड़े खर्च से उत्पादन करने की हमारी क्षमता बढ़ती गई। कितने ही लोगों का करोड़ों रुपये खर्च करके भी रुका हुआ काम हमारे कर्मचारियों की मदद सर्जकता, जिंदादिली और कार्य क्षमता से पूरा हो जाता। १९५६ से भारत सरकार ने खेती को महत्त्व देना शुरू किया। तब से एक्सैल ने खेती के रसायनों पर अधिक ध्यान देना शुरू किया, और पिछले चालीस वर्षों में हम देश भर के किसानों के पास पहुँच गए। शुरू में पश्चिम के वैज्ञानिकों जैसा करने की इच्छा रखते थे पर बाद में हमें ख्याल आया कि हमें अपने देश में अपने ही विज्ञान का सर्जन करना चाहिए। इसके लिए देश भर में से ऐसे लोग इकट्ठे करने पड़ेंगे। ईशावास्यमिदम् सर्वम्' इस भाव से सीखना पड़ेगा। सर्जन और दर्शन एक हो जाए तो सब सुन्दरता और संपूर्णता का अनुभव हो सकता है।

स्वामी विवेकानन्द के संदेश को आदर्श रूप में सामने रख कर भविष्य के उद्योग गृह, उनमें बनने वाले पदार्थों का उत्पादन, उनको बेचना और उनसे कितना लाभ मिला यह उसका मापदण्ड नहीं होना चाहिए। उससे समाज के उत्थान की जवाबदारी लेनी चाहिए। यहाँ विवाद, झगड़ा, जातिवाद, गरीबी अज्ञानता यह बढ़ रही है। इसे दूर करना है। कभी सूखा, कभी बाढ़, प्रकृतिदत्त वातावरण, बंजर भूमि, वनस्पति, प्राणी-पक्षी, ये सब जब हो तो इनका सामना करना है और सबकी सेवा करनी है। इसलिए अपनी दृष्टि में पवित्रता और सेवा भावना जगाने की जरूरत है। इसके लिए कुछ समय से दुष्काल से घिरे लोगों के लिए कच्छ में ('सृजन-विवेकानन्द रीसर्च एण्ड ट्रेनिंग इस्टीच्यूट और ऐग्रोसेल सर्विस सेन्टर में हमारे साथियों के सहकार से चल रही दूसरी संस्थाएँ भी ऐसे सेवा कार्य कर रही हैं। ऐसे काम करने के लिए स्वामी जी के प्रत्ति श्रद्धा, एकाग्रता, समन्वय भावना और अद्वैतभाव जैसे गुणों की जरूरत पड़े यह सब स्वाभाविक है। एक के बाद एक काम करना उनकी जवाबदारी स्वीकारना, यह गुण हम सभी का मार्गदर्शक बन गया है। ❑

रामकृष्ण मिशन आश्रम, छपरा में आयोजित जयंतियाँ

स्वामी अद्भुतानन्द की जयन्ती

छपरा, २४ फरवरी ।

रामकृष्ण मिशन आश्रम के स्थानीय परिसर में स्वामी अदभुतानन्द जी महाराज की जन्म तिथि श्रद्धा और भक्तिपूर्वक गुरुवार को मनायी गयी। रामकृष्ण मिशन पटना के सचिव स्वामी तदगतानन्द जी महाराज की अध्यक्षता में हुए कार्यक्रम की शुरूआत मंगल आरती, वेद पाठ और विशेष पूजा से हुई। स्वामी जी ने भजन-प्रवचन के माध्यम से लोगों को सदशिक्षा दी। मनीषा और विनय तिवारी ने भी भजन-गायन प्रस्तुत किया। इस अवसर पर सीता ओझा ने अदभुतानन्द जी के व्यक्तित्व-कृतित्व पर विचार प्रकट किए। अदभुतानन्द जी के जीवन एवं संदेश पर विशेष धर्म सभा का भी आयोजन तथा सांस्कृतिक कार्यक्रम हुआ। आश्रम के सचिव स्वामी मुनीश्वनानन्द समेत कई गणमान्य लोग इस अवसर पर उपस्थित थे।

'भोगवादी संस्कृति के संदर्भ में श्री रामकृष्ण देव का उपदेश अत्यंत प्रासंगिक'

(भगवान श्री रामकृष्ण देव के आविर्भाव दिवस पर भव्य समारोह)

छपरा, १२ मार्च ।

भगवान श्री रामकृष्ण देव के आविर्भाव दिवस पर आज छपरा रामकृष्ण मिशन आश्रम में एक भव्य समारोह का आयोजन किया गया। इस अवसर पर मंगल आरती वेद पाठ, पूजा, भजन आदि का कार्यक्रम भी संपन्न हुआ। दूसरे सत्र में रामकृष्ण देव के जीवन एवं उपदेश पाठ सहित अन्य कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये। तदुपरांत सामूहिक प्रसाद ग्रहण किया गया।

समारोह को संबोधित करते हुए आश्रम के वरिष्ठ सदस्य एवं मुख्य वक्ता डॉ० केदार नाथ लाभ ने भगवान रामकृष्ण देव की जीवनी और उपदेशों की विस्तृत जानकारी दी। उन्होंने कहा कि आज के सांप्रदायिक विद्वेष, जातीयता और भोगवादी संस्कृति के संदर्भ में श्री रामकृष्ण देव के उपदेश आज अत्यंत ही प्रासंगिक हो गये हैं। उन्होंने कहा कि विभिन्न धर्मों के लिए श्री रामकृष्ण देव जी ने यतोमत ततोपथ का संदेश दिया था जिसे पूरे संसार के लोगों ने अंगीकार किया है।

समारोह में उपस्थित पटना आश्रम के स्वामी भावात्मानन्द जी महाराज ने कहा कि श्री रामकृष्ण देव का जीवन मानव एकात्मकता तथा भावात्मक प्रेम का दिव्य संगम है। समारोह को संबोधित करने वाले अन्य महत्त्वपूर्ण वक्ताओं में डॉ० रविशंकर प्रसाद सिन्हा आदि के नाम शामिल हैं। इसके पूर्व अतिथियों का स्वागत स्वामी मुनीश्वरानंद जी ने किया तथा धन्यवाद ज्ञापन डॉ० मधुकर ने किया। वहीं पटना के भजन पार्टी ने देर शाम तक भजन-संगीत कार्यक्रम प्रस्तुत किया।

रामकृष्ण मिशन आश्रम, राँची में तरुणोदय के पादरियों को हिन्दू धर्म का प्रशिक्षण

राँची : यहाँ बोड़या स्थित तरुणोदय के फादरों को हिन्दू धर्म का प्रशिक्षण दिया गया। रामकृष्ण मिशन आश्रम मोरहाबादी स्थित सभागृह में सचिव स्वामी शशांकानन्द जी महाराज ने सुबह नौ बजे फादरों को प्रशिक्षण दिया। उन्होंने इस कार्यक्रम में बताया कि हिन्दू धर्म का कोई संस्थापक नहीं है। इस धर्म का कोई संस्थापना दिवस नहीं है। इस धर्म के ग्रंथों का लेखक कोई व्यक्ति विशेष या व्यक्ति समूह नहीं है। इसमें अनगिनत धर्मशास्त्र हैं। तैंतीस करोड़ देवता हैं और अभी भी आनेवाले देवताओं के लिए स्थान रिक्त है। इसमें छह दर्शन हैं और विभिन्न रूचि के अनुसार असंख्य संप्रदाय हैं। इसके बावजूद हिन्दू अनेकता में एकता पर विश्वास करता है। इस धर्म में कहा गया है कि सत्य एक है और उसे विभिन्न नामों से पुकारा जाता है। एक ही परिवार में भिन्न-भिन्न रूचि व मत के अनुसार पूजा पद्धति, प्रार्थना व शास्त्रों की पसंद अलग-अलग होती है। परन्तु इसकी वजह से कोई झगड़े नहीं होते। कोई मतभेद नहीं होता। एकता का ज्ञान ही भारतीयों का मेरुदंड है। इसलिए भारत माता ने बाहर से आये सभी धर्मों का अपनी संतान की तरह पालन किया है। नये-नये धर्मों को जन्म दिया है। स्वामी जी ने आत्मा के संबंध में बताया कि यह देह इंद्रिय, मन, बुद्धि, चित्त-अहंकार से परे है। उन्होंने आत्मानुभूति का मार्ग भी बताया। कार्यक्रम के समापन पर एक फादर ने स्वामी जी के प्रति आभार प्रकट करते हुए कहा कि यह कार्यक्रम उनके लिए ज्ञान की धरोहर बनकर रहेगा। ❑

भगवान् श्रीरामकृष्ण का सार्वजनीन मन्दिर

नम्र निवेदन

प्रिय, भक्तजन एवं सज्जनो !

नागपुर नगर में स्थित रामकृष्ण मठ स्वामी विवेकानन्द द्वारा स्थापित रामकृष्ण संघ का ही एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र है जो पिछले ७४ वर्षों से भगवान् श्रीरामकृष्ण देव के आदर्शवाक्य 'शिवज्ञान से जीवसेवा' को उद्देश्य मानकर जनता की अनेकविध सेवाओं में प्रयत्नशील रहा है।

मठ का वर्तमान मन्दिर जीर्ण-शीर्ण होने तथा भक्तों की बढ़ती संख्या से प्रार्थना-कक्ष छोटा पड़ने के कारण विवश होकर हमने पुराने भवन के स्थान पर ही संकल्पित वड़ा मन्दिर का निर्णय लिया है जिसके विवरण निम्नलिखित हैं–

मन्दिर की लम्बाई एवं चौड़ाई	११७'×४८'
मन्दिर की ऊँचाई	६७'
गर्भ-मन्दिर (पूजागृह)	१८'-६''×१८'-६''
उपासना कक्ष (५०० भक्तों के बैठने के लिये)	६७'×४०'
दोनों ओर के बरामदे	६७'×४'
मन्दिर-तलघर एवं सभा भवन	९१'-६''×५१

इस समस्त निर्माण कार्य पर लगभग तीन करोड़ रुपयों के व्यय के लिये यह मठ जन-साधारण से मिले दान पर ही निर्भर है। अतः आपसे हमारा आन्तरिक अनुरोध है कि मानवता की सर्वांगीण उन्नति हेतु प्रस्तावित इस योजना के लिए आप **उदारतापूर्वक दान** दें।

भगवान् श्रीरामकृष्ण देव का आप सभी पर आशीर्वाद रहे, इस प्रार्थना सहित–

कृपया ध्यान दें–

दान की राशि डी.डी./चेक द्वारा रामकृष्ण मठ, नागपुर के नाम पर भेजे। दान की राशि आयकर की धारा ८०-जी के अन्तर्गत आयकर से मुक्त होगी। विदेशी मुद्रा में दिया गया दान भी स्वीकार किया जाएगा।

प्रभु की सेवा में,
(स्वामी ब्रह्मस्थानन्द)
अध्यक्ष
रामकृष्ण मठ, धंतोली, नागपुर

रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर–४४० ०१२
फोन : २५२३४२२, २५३२६९०, फैक्स : २५३७०४२
ई.मेल : rkmath@nagpur.dot.net.in

डाक पंजीयित संख्या – सी.एच.पी. १४-८३
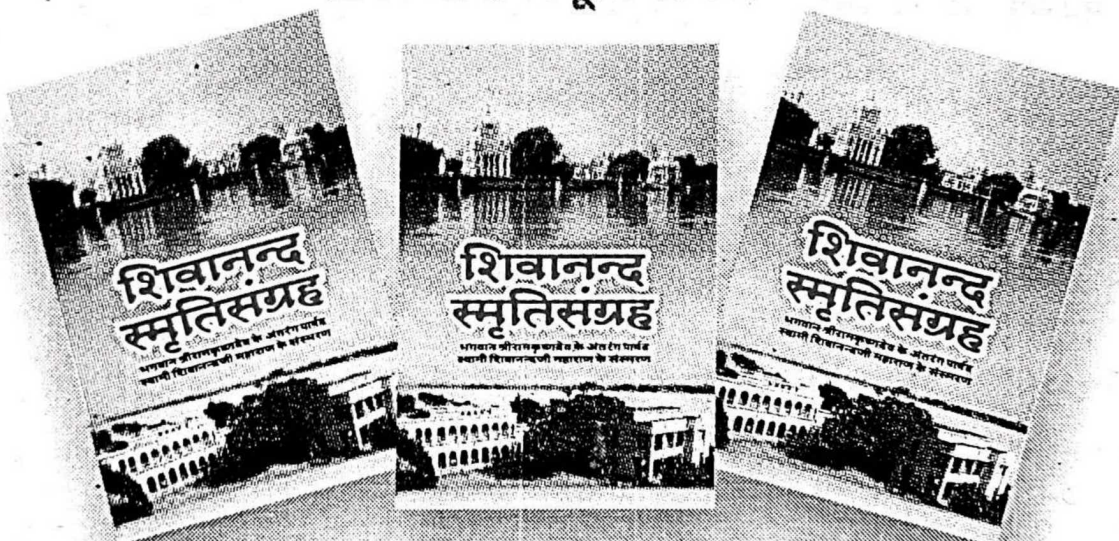
डॉ. केदारनाथ लाभ, रामकृष्ण निलयम्, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार)
द्वारा प्रकाशित एवं सम्पादित तथा विवेकानन्द
ऑफसेट प्रिन्टर्स, छपरा – ८४१३०१ में मुद्रित।

मुद्रक : वृषाली ऑफसेट, नागपुर-१८